शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 8 अंक : 1 1 अगस्त 2015

(श्रावण, विक्रम संवत् 2072)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी

प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

डॉ. नाथू लाल सुमन

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल

नौरंग सहाय भारतीय

कार्यालय प्रभारी

आलोक चतुर्वेदी 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग, जयपुर (राज.) 302001

दूरभाष: 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13, कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053

दूरभाष: 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at:

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-

आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शिक्षा से जुड़ा है स्वतन्त्रता का भविष्य ❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

महात्मा गाँधी की आशंका सही सिद्ध हुई है। महात्मा गाँधी ने देश स्वतन्त्र होने से पूर्व ही कह दिया था कि मैकाले पद्धति की शिक्षा से निकले लोग स्वराज का अर्थ नहीं समझेंगे और वे प्रजा को परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। महात्मा गाँधी दूरदर्शी थे उन्होंने बहुत पहले ही भाँप लिया मगर हम अभी तक उसी शिक्षा पद्धति को गले लगाये हुये हैं। मातृभाषा के तिरस्कार का परिणाम है कि आज अंग्रेजी पूरे देश के कानून, उद्योग व उच्च शिक्षा की भाषा बन चुकी है। देश, इंडिया व भारत दो भागों में बँटा हुआ है।

12

अनुक्रम

4.	शिक्षा में असमानता से स्वातंत्र्य को खतरा	- सन्तोष पाण्डेय
6.	बेमिसाल शिक्षक - एपीजे अब्दुल कलाम	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
10.	आजादी का सातवाँ दशक और शिक्षा की चुनौतियाँ	- बजरंगी सिंह
14.	वास्तविक स्वतन्त्रता- भारतीय शिक्षा द्वारा ही सम्भव	- डॉ. रेखा भट्ट
16.	स्वतंत्रता और अध्यात्म	- डॉ.विजय अग्रवाल
18.	शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व विकास और चरित्र...	- अतुल कोठारी
21.	शिक्षा : उपेक्षित होते विश्वविद्यालय	- अवधेश कुमार सिंह
23.	स्वातन्त्र्योत्तर भारत की उच्च शिक्षा: एक सिंहावलोकन	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
29.	Current Education System and Freedom	- Dr. A. K. Gupta
31.	'विद्या ददाति विनयम्'-फिर अविनय वृद्धि क्यों?	- प्रो.वीर बहादुर सिंह
33.	अनुकरण की शिक्षा	- बनवारी
35.	शिक्षा का प्रबन्धन	- प्रो. जे.पी. सिंघल
37.	राजनीतिक शिकंजे की शिकार उच्च शिक्षा	
39.	गतिविधि	

Free Bharat and Freedom of Education

❑ Dr. TS Girishkumar

Freedom of any nation shall lie in the complete realisation of the identity of the nation. Mere political freedom can only be far flung; the nation has to work towards realisation of identity whatsoever. In our case, this at once becomes a huge and herculean task; as there had been no meaningful efforts for over a thousand years to create awareness of Bharatiya Sanskriti from any corner. If one looks back at the kind of education one had been receiving right from LKG to PhD, was there anything serious taught to us by way of Bharatiya Sanskriti in the curriculum?

25

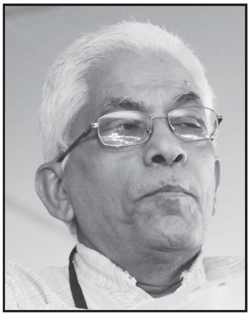

शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव किया गया कि अकेले सरकार ही सभी को शिक्षा प्रदान करने में असमर्थ है। निजी उद्यम व निजी सार्वजनिक सहभागिता के आधार पर सभी को सभी प्रकार की शिक्षा सुविधा उपलब्ध करायी जा सकती है। प्रकटत: यह बहुत सरल दिखता है, परन्तु वास्तव में राजनीतिक सत्ता अपने उत्तरदायित्व का परिहरण कर रही है। निजी उद्यम की शिक्षा व्यवस्था पर पकड़ मजबूत हो रही है। परिणाम सरकारी शिक्षण संस्थाओं से भरोसा उठ रहा है। सरकार शिक्षा संस्थान प्राथमिक से लेकर उच्चशिक्षा व शोध तक दुरावस्था में है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तो स्वप्न बनकर रह गया है। भारी लाभ कमाने के स्त्रोत निजी शिक्षण संस्थान अच्छी व रोजगार दिलाने वाली शिक्षा प्रदान करने की आड़ में भारी लाभ कमा रहे हैं।

शिक्षा में असमानता से स्वातंत्र्य को खतरा

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

संपादकीय

भारत का विश्व के अग्रणी प्रजातांत्रिक देशों में महत्त्वपूर्ण स्थान है विशाल जनसंख्या के बावजूद लोकतांत्रिक व्यवस्था के सुचारु रूप से सफलतापूर्वक चलाये रखना एक विशेषता है। स्वातंत्र्य का भाव जन-जन में समाया है। भारत उन गिने चुने देशों में से एक है, जहाँ स्वतंत्रता का एक गौरवमय व संघर्षपूर्ण इतिहास रहा है। स्वतंत्रता का अभिप्राय प्राय: राजनीतिक स्वतंत्रता से लिया जाता है। परन्तु भारत में सदियों से स्वतंत्रता के केन्द्र, राजनीतिक पहलू के साथ-साथ सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक स्वतंत्रता संबंधी महत्त्वपूर्ण पहलू है। भारत के गौरवमय स्वातंत्र्य के दीर्घकालीन इतिहास में राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ धार्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक स्वतंत्रता का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ये सभी स्वातंत्र्य देश की सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के अजस्र स्रोत रहे हैं। इस स्वातंत्र्य को पुष्पित व पल्लवित्त करने में शिक्षा का बड़ा योग रहा है। प्राचीन काल से चली आ रही महर्षि/ मुनियों की उपस्थिति तथा गुरुकुलों की गौरवशाली परंपरा आधारित शिक्षा व्यवस्था आत्मनिर्भर, स्वावलंबी, स्वतंत्र एवं भारतीय मानस चेतना तो थी ही, वह राष्ट्र व देश के गौरव, राष्ट्र-भाव, सांस्कृतिक विरासत व नैतिक बल को पुष्ट करने वाली थी। इनकी शक्ति का मूल स्रोत स्वातंत्र्य ही था। इस स्वातंत्र्य को रक्षा व मान सम्मान के लिय राजनीतिक शक्ति सदैव तत्पर रहती थी। शिक्षा स्वातंत्र्य पर निर्भर थी तो स्वातंत्र्य भी शिक्षा से शक्ति पाता था। दोनों की परस्परिक निर्भरता जब तक पुष्ट होती रही, देश भी आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से सर्व शक्तिशाली बना रहा।

परन्तु देश में ऐसा कालखण्ड भी आया, जब राजनीतिक सत्ता में अन्यान्य कारणों से ढिलाई आयी, तो देश को विदेशी आक्रांताओं का सामना करना पड़ा, जिससे राजनीतिक सत्ता निरन्तर कमजोर हो गई । परिणाम था देश में अन्धकार युग का प्रारंभ जिसकी चरम परणति मुगल-अंग्रेजी शासन की स्थापना में हुई। यह कालखण्ड अनुमानत: 1500 वर्षों का रहा। राजनीतिक स्वातंत्र्य के पराभव के साथ ही शिक्षा सर्वप्रथम बलि बनी, ऋषि-मुनियों का स्थान पश्चिमी विचार व संस्कृति ने लेना प्रारंभ कर दिया। गुरुकुल के स्थान पर मदरसे आये । परन्तु दो रूप के देशों के आगमन से पूर्व तक, विदेशी संस्कृतियों को भारतीय संस्कृति स्वयं में समाती रही। एक शिक्षित सांस्कृतिक प्रादुर्भाव राजनीतिक स्वातंत्र्य का सरण तो हुआ परन्तु सांस्कृतिक, भाषायी धार्मिक व नैतिक स्वातंत्र्य व आर्थिक सम्पन्नता कायम रहने से शिक्षा का स्वातंत्र्य व शक्ति कायम रही। अंग्रेजी शासन ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित रहा जिसने भारत को कभी भी अपना माना ही नहीं। मातृदेश व उपनिवेश की राजनीतिक व्यवस्था शनै: शनै: पुष्ट हुई। इस व्यवस्था में सब से बड़ी बाधा भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक व शैक्षिक स्वतंत्रता थी। इस बाधा का निराकरण मैकाले की शिक्षा योजना पर अमल कर किया गया। यदि औद्योगिक क्रांति ने इंगलैंड को नये लोग, नयी सामाज व्यवस्था व संबंध दिये तो मैकाले शिक्षा पद्धति ने भी भारत में नये विचार, नई जीवनशैली, स्वावलंबन को त्याग नौकरी व्यवस्था, नई उत्पादन व्यवस्था भाषायी थी। ये सभी भारत में व्याप्त सांस्कृतिक आर्थिक शैक्षिक स्वातंत्र्य के मूल पर चोट करने वाली सिद्ध हुई। भारत जिसकी सांस्कृतिक धर्म, अर्थ,शिक्षा कभी संकट में नहीं आयी, उसका गंभीर क्षरण प्रारंभ हुआ। परंतु यह देश की माटी का ही कमाल है कि देश राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से तो परास्त हुआ परन्तु संस्कृति, धर्म, नैतिक मूल्यों, जीवन के शाश्वत मूल्यों ने कभी परास्त नहीं होने दिया। शैक्षिक स्वातंत्र्य के पराभव का तात्कालिक प्रभाव तो रहा, परन्तु अतिशीघ्र ही सांस्कृति, संस्कार, नैतिक व धार्मिक मूलाधारों ने नई शक्ति प्रदान की जिससे राष्ट्रीयता के भाव, मातृभाषा के महत्त्व, शिक्षा के उद्देश्य, को नई ऊर्जा व दिशा प्रदान की, आर्थिक परतंत्रता के दुष्परिणामों के प्रति देश व समाज को जागरूक किया। परिणाम भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन ने जो केवल राजनीतिक स्वतंत्रता व सत्ता प्राप्ति तक सीमित नहीं था, भारत की मूलशिक्षा व्यवस्था को पुन:स्थापित कर, सामाजिक सुधार के माध्यम से मैकालयी शिक्षा व्यवस्था का प्रतिकार कर सभी प्रकार

के स्वातंत्र्य को पुन: स्थापित करना था।

इन सबका परिणाम रहा भारत की आजादी। राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति का मूल उद्देश्य तो भारत में एक बार फिर सभी प्रकार कि स्वातंत्र्य को पुन: स्थापना करना था, परन्तु मैकाल की शिक्षा व्यवस्था देश के शैक्षिक स्वातंत्र्य पर गंभीर घात कर गई। अंग्रेज तो चले गये, परन्तु पराधीनता के चिह्न स्वरूप एक नया वर्ग अंग्रेजी भाषा व भाषाजनित संस्कृति, सोच दृष्टिकोण व जीवन दर्शन छोड़ गये, जिसके घातक दुष्परिणामों को देश आज भी भोग रहा है। अंग्रेजी व अंग्रेजियत का व्याप बढ़ा है व पुष्ट भी हुआ है। पश्चिमी जीवनशैली आधारित संस्कृति को अपनाने तथा अंग्रेजी को ही सभी सफलताओं का स्रोत स्वीकार करनेवाले वर्ग का विस्तार हो रहा है। यह प्रकृति भारत के सांस्कृतिक, नैतिक व शैक्षिक स्वातंत्र्य की पुन:स्थापना में बड़ी बाधा है। इतिहास इस बात का गवाह है कि स्वातंत्र्य का क्षरण अन्तत: राजनीतिक स्वातंत्र्य के लिये भी खतरा बनता है।

भारत में राजनीतिक स्वातंत्र्य के सात दशक पूरे होने को हैं। देश ने योजनाबद्ध के साथ सभी प्रकार के स्वातन्त्र्य को प्रेरित व पुष्ट करने के प्रयासों को अपेक्षित परिणाम नहीं आने पर वैश्वीकरण, उदारीकरण व उदार पूँजीवाद की नीति अपनाकर सम्पूर्ण विश्व के साथ तदात्म करने का मार्ग अपनाया है। देश में तीव्र परिवर्तन समाज की सोच को बदल रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में अनुभव किया गया कि अकेले सरकार ही सभी को शिक्षा प्रदान करने में असमर्थ है। निजी उद्यम व निजी सार्वजनिक सहभागिता के आधार पर सभी को सभी प्रकार की शिक्षा सुविधा उपलब्ध करायी जा सकती है। प्रकटत: यह बहुत सरल दिखता है, परन्तु वास्तव में राजनीतिक सत्ता अपने उत्तरदायित्व का परिहरण कर रही है। निजी उद्यम की शिक्षा व्यवस्था पर पकड़ मजबूत हो रही है। परिणाम सरकारी शिक्षण संस्थाओं से भरोसा उठ रहा है। सरकार शिक्षा संस्थान प्राथमिक से लेकर उच्चशिक्षा व शोध तक दुरावस्था में है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तो स्वप्न बनकर रह गया है। भारी लाभ कमाने के स्रोत निजी शिक्षण संस्थान अच्छी व रोजगार दिलाने वाली शिक्षा प्रदान करने की आड़ में भारी लाभ कमा रहे हैं। यह व्यवस्था शिक्षा में घोर असमानता को निरन्तर बढ़ा रही है, एक ओर करोड़ों छात्र सरकारी संस्थानों व विश्वविद्यालयों में महज कागजी महत्त्व की डिग्रियाँ व डिप्लोमा प्राप्त कर बेरोजगार परावलंबी, व प्रारंभण विहीन युवा श्रम शक्ति की विशाल फौज को बढ़ा रहे हैं, तो दूसरी ओर धन बल के सहारे अंग्रेजी व अंग्रेजियत का हिमायती वर्ग अपने बच्चों को श्रेष्ठ तय निजी शिक्षण संस्थाओं और विदेशों में शिक्षा दिलाकर, रोजगार व्यवसाय व उद्योग सेवा क्षेत्र के श्रेष्ठतम अवसरों को कब्जा रहा है, प्रतिभा का ध्यान गौण हो गया है। यह दोहरी शिक्षा व्यवस्था शैक्षिक स्वातंत्र्य को सबसे बड़ा खतरा है। दोहरी शैक्षिक व्यवस्था एक ओर देश के जो साधनहीन, सुविधा विहीन व रोजगार के अवसरों से वंचित वहुसंख्यक वर्ग है, का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर साधन सम्पन्न, आय व रोजगार के साधनों से युक्त धनी, अति धनी, उच्च मध्यम व मध्यम वर्ग से युक्त वर्ग है, जो सांस्कृतिक दृष्टि व नैतिक मूल्यों व जीवनशैली में पश्चिम का अनुकरण करता है व अंग्रेजी भाषा, पश्चिमी तकनीकी ज्ञान को श्रेष्ठ मान, भारत में इन्हें पुष्ट करने में जुटा है। वर्तमान में विकास के नाम पर यह वर्ग आकार में फैल रहा है। यह भारत की स्वतंत्रता के लिए ही नहीं, संस्कृति, धर्म, आचरण नैतिकता, शाश्वत जीवन मूल्यों के लिये भी गंभीर चुनौती है। इसका सामना आज की पीढ़ी को संस्कारित करने वाली शिक्षा व्यवस्था को प्रभावी बनाकर ही की जा सकता है। युवा पीढ़ी को भारतीय जीवन मूल्यों से परिचित कराना सुसंस्कार की पहली सीढ़ी है। इसके लिए शिक्षा को स्वायत व स्वावलम्बी बनाना अति आवश्यक है। यदि भारतीय शिक्षा व्यवस्था का रूपान्तरण पश्चिमी सभ्यता तकनीक भाषा, निजी प्रारंभण में होता है, तो शैक्षिक स्वतंत्रता तो खतरे में पड़ेगी ही, देश की सांस्कृतिक परंपरा भी संकटग्रस्त होगी। यदि संस्कृति व भारतीय भाषाओं का पराभव होता है, तो राजनीतिक स्वातंत्र्य एक बार पुन: खतरे में आयेगा। सावचेत करने वाले संकेतकों को समझना चाहिये व उपयुक्त नीतियाँ बनानी चाहिये, यही समय की माँग है। ❑

बेमिसाल शिक्षक – एपीजे अब्दुल कलाम

डॉ. अब्दुल कलाम का मानना है कि देश की प्रगति की गति बहुत तेज हो सकती है यदि भारत की प्रशासनिक व्यवस्था कुशल, शिक्षा का स्तर ऊँचा और विकास कार्यों में राजनीतिक हस्तक्षेप न्यूनतम हो। आज देश के अन्तरिक्ष या परमाणु अनुसंधान की आलोचना करने वालों की कमी नहीं है। ऐसे में अब्दुल कलाम एक पदप्रदर्शक का कार्य करते हैं। डॉ. कलाम विकास को सुरक्षा से जोड़ कर देखते हैं। रोटी, कपड़ा और मकान के रूप में गरीबी से सुरक्षा के साथ ही सामाजिक सुरक्षा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा को भी वे विकास का अंग मानते हैं। कलाम साहब का मानना है कि अमेरिकी, जापानी या सिंगापुरी समाधान भारत के लिए कारगर नहीं हो सकते हैं। भारत को सिद्धान्तों का आयात और अवधारणाओं का प्रत्यारोपण करने के बजाय अपने खुद के समाधान विकसित करने चाहिए।

❑ **विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

किसी राष्ट्र के विकास में शिक्षक की क्या भूमिका होती है यह बात यदि जाननी हो तो भारत के पूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय एपीजे अब्दुल कलाम के जीवन को देखा जाना चाहिए। देश के सर्वोच्च सम्मान व राष्ट्रपति के पद पर पहुँचने के बाद भी शिक्षक बने रहना, राष्ट्रपति पद से निवृति के दूसरे दिन से ही शिक्षक के कार्य को अपनाना तथा पूर्व राष्ट्रपति के स्थान पर कार्यरत प्रोफेसर कहलाना पसन्द करने का अब्दुल कलाम जैसा उदाहरण विश्व में अन्यत्र शायद ही मिले। इसे एपीजे अब्दुल कलाम की भावना का ईश्वरीय सम्मान ही माना जाना चाहिए कि शिक्षक की भूमिका निभाते निभाते उनका प्रणान्त हुआ।

अत्यन्त साधारण मछुआरा परिवार में जन्में, मेहनत व लगन से सफलता प्राप्त कर राष्ट्रपति बने एपीजे अब्दुल कलाम एक आदर्श भारतीय के रूप में सभी को प्रेरित करते है। भारतीय संस्कृति में अटूट श्रद्धा रखने वाले कलाम भारत को एक बार पुनः विश्व गुरु के रूप में स्थापित करने का सपना युवा पीढ़ी के मन-मस्तिष्क में डालने का अथक प्रयास करते रहे हैं। अविवाहित रह कर भारत राष्ट के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से काम करने वाले अब्दुल कलाम का जीवन उपनिषदों के मंत्रों की चलती फिरती मूरत सा लगता है।

भारतीयता पर विश्वास

अबुल पाकिर जैनुलआबदीन अब्दुल कलाम का जन्म तमिलनाडु प्रान्त के रामेश्वरम जिले में धनुषकोड़ी ग्राम में हुआ था। परिवार नाव परिवहन, मछली पालन तथा समाचार पत्र बेच कर अपनी आजीविका कमाता था। अब्दुल कलाम का प्रारम्भिक जीवन, परिवार के संघर्षों के साथ अपने को एकाकार कर ग्रामीण संस्कृति की सुवास में शिक्षित होते हुए बीता। उच्च शिक्षा हेतु मद्रास (चेन्नई) गए। उच्च शिक्षा हेतु देश से बाहर जाना आज एक फैशन बन गया है तब अब्दुल कलाम एक आदर्श उदाहरण के रूप में उभरते हैं। उच्च शिक्षा हेतु देश से बाहर जाना तो दूर कलाम अपने प्रदेश से भी बाहर नहीं गए। वैज्ञानिक के रूप में भी केवल कुछ दिन का एक प्रशिक्षण नासा (अमेरिका) में प्राप्त किया। अब्दुल कलाम के सम्पूर्ण आविष्कारों को पूर्ण स्वदेशी मानकर हम गर्व का अनुभव कर सकते हैं। उनके द्वारा विकसित राकेट पर बैठ कर गए मंगलयान ने विश्व में अद्वितीय सफलता प्राप्त कर यह संदेश दिया है कि कुछ कर दिखाने के लिए देश प्रेम की भावना से बड़ी शिक्षा कोई नहीं हो सकती।

उपलब्धियों भरा जीवन

अब्दुल कलाम के परिवार की आर्थिक

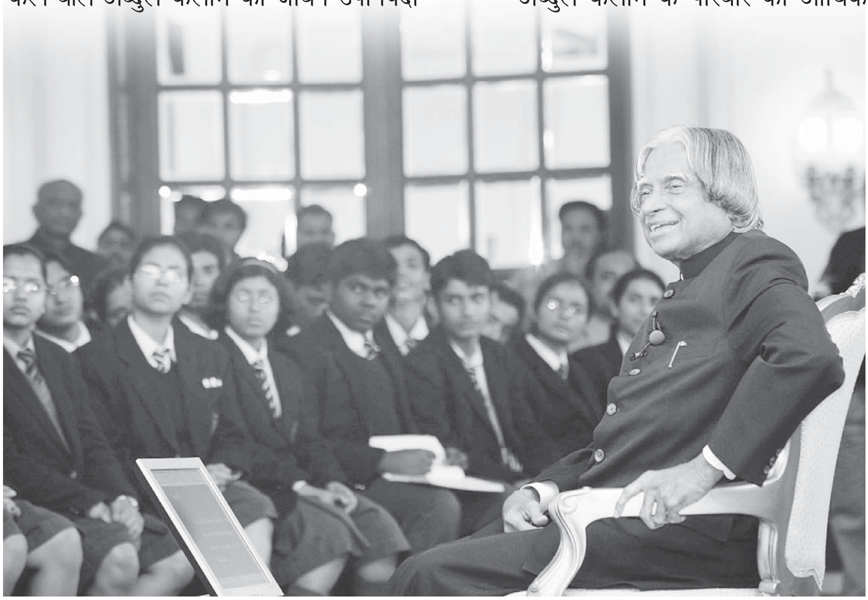

स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह अपने बच्चे को उच्च शिक्षा दिला सके। यह परिवार का आपसी स्नेह तथा कलाम का कठिन परिश्रम था जिसने इस प्रतिभा को राष्ट्रीय मंच तक पहुँचा दिया। स्नातक उपाधि के बाद इंजिनियरिंग का अध्ययन पूर्ण होते ही इन्हें सहायक वैज्ञानिक के रूप में नौकरी मिल गई। अपने 43 साल के सेवाकाल में कलाम ने रॉकेट विज्ञान में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की जिसके कारण उपग्रहों को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित करने की क्षमता रखने वाले विश्व के गिने चुने राष्ट्रों की सूची में भारत का नाम भी शामिल हो सका। इन उपलब्धियों के कारण ही पृथ्वी, ब्रह्मोस,आकाश, नाग आदि प्रक्षेपास्त्रों का विकास हुआ और देश की रक्षा व्यवस्था को नया आयाम मिला। मिसाइल मैन के रूप में विख्यात डॉ.कलाम का यह कहना सही है कि हथियारों का प्रयोग किसी को डराने में नहीं करना है, युवा पीढ़ी का मनोबल बढ़ाकर उसे आगे बढ़ने को प्रेरित करने हेतु करना है।। इनके प्रबल योगदान को स्वीकार करते हुए इन्हें पदमभूषण, पदम विभूषण तथा 1997 में भारतरत्न से सम्मानित किया गया। 11 मई 1998 को पोखरण में किया गया दूसरा परमाणु परीक्षण इनकी उपलब्धियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 2002 में अब्दुल कलाम भारी बहुमत से भारत के राष्ट्रपति चुने गए। इनका पाँच वर्ष का कार्यकाल अत्यन्त सफल रहा। दूसरी बार पुनः राष्ट्रपति चुने जाने में कोई भी कोई संशय नहीं था मगर पक्ष एवं विपक्ष दोनों के सहमत नहीं हो पाने पर आपने चुनाव नहीं लड़ने का फैसला किया।

जब कलाम को राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार बनाया गया तब बहुत से लोगों का यह मानना था कि राजनैतिक अनुभव के अभाव में अब्दुल कलाम देश के सर्वोच्च पद के साथ शायद न्याय नहीं कर पायेंगे। राष्ट्रपति के रूप में कलाम ने उन सभी आशंकाओं को निरर्थक सिद्ध कर दिया। राष्ट्रपति के रूप में जो लोकप्रियता अब्दुल कलाम ने प्राप्त की वह बेमिसाल है। राष्ट्रपति पद की अवधि की समाप्ति के समय अब्दुल कलाम की लोकप्रियता चरम पर थी। यदि भारत के राष्ट्रपति का चुनाव सीधे जनता द्वारा होता तो निश्चय ही कलाम भारी बहुमत से पुनः चुने जाते। अब्दुल कलाम की लोकप्रियता का कारण उनका देशप्रेम, देश की समस्याओं के अध्ययन की गहरी समझ तथा उन समस्याओं से निपटने हेतु दीर्घ अवधि की योजना बनाने की उनकी क्षमता को दिया जा सकता है। इन्हें जन राष्ट्रपति भी कहा जाता है।

डॉ. अब्दुल कलाम का मानना है कि देश की प्रगति की गति बहुत तेज हो सकती है यदि भारत की प्रशासनिक व्यवस्था कुशल, शिक्षा का स्तर ऊँचा और विकास कार्यों में राजनीतिक हस्तक्षेप न्यूनतम हो। आज देश के अन्तरिक्ष या परमाणु अनुसंधान की आलोचना करने वालों की कमी नहीं है। ऐसे में अब्दुल कलाम एक पदप्रदर्शक का कार्य करते हैं। डॉ. कलाम विकास को सुरक्षा से जोड़ कर देखते हैं। रोटी, कपड़ा और मकान के रूप में गरीबी से सुरक्षा के साथ ही सामाजिक सुरक्षा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा को भी वे विकास का अंग मानते हैं।

कलाम साहब का मानना है कि अमेरिकी, जापानी या सिंगापुरी समाधान भारत के लिए कारगर नहीं हो सकते हैं। भारत को सिद्धान्तों का आयात और अवधारणाओं का प्रत्यारोपण करने के बजाय अपने खुद के समाधान विकसित करने चाहिए। देश की सीमाओं की सुरक्षा के लिए परमाणु शक्ति व अन्य तैयारियाँ रखने के विषय में भी कलाम का रुख एकदम स्पष्ट है। जब अमृत्य सेन ने भारत के परमाणु परीक्षण की आलोचना की तो अब्दुल कलाम ने कहा कि सेन अमेरिका की दृष्टि से भारत को देखते हैं जो भारत को शक्तिशाली नहीं देखना चाहता। भारत शक्तिशाली होगा तभी सभी उसे पूछेंगे अन्यथा नहीं। कलाम की बात आज सच सिद्ध हो चुकी है। भारत को क्रायोजनिक इंजिन देने का विरोध करने वाला अमेरिका आज

अन्तरिक्ष अभियान में भारत से सहयोग करने को उत्सुक है।

देश की पंथ निरपेक्ष छवि को लेकर उनके मन में कोई दुविधा नहीं है। उनका मानना है, भारत की संस्कृति अति प्राचीन है। इस्लाम के भारत में जड़े जमाने तथा ईसाई धर्म के भारत में प्रचार पाने के बहुत पहले से भारतीय संस्कृति इस देश में मौजूद रही है। सच्चे लोगों को भारतीय संस्कृति के साथ इन धर्मों को अपनाने में कोई दुविधा नहीं होती है। अब्दुल कलाम कहते हैं कि केरल की परम्परागत धोती पहनने से न ही तो ए.के.एन्थोनी की ईसाईयत किसी तरह कम नहीं होती और न ही उनके ईसाई होने से उनकी भारतीयता पर कोई आँच आती है। ए.आर. रहमान जब वंदे मातरम् गाते हैं तो उनका स्वर हर भारतीय की आत्मा को झकझोर जाता है, चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला क्यों नहीं हो? वे स्पष्टता से कहते हैं कि जब हम भारत को उसके गौरवशाली अतीत के के साथ स्वीकार करेंगे तभी हम सभी के लिए, शान्ति और समृद्धि से भरपूर, एक समान भविष्य की उम्मीद रख सकते हैं। हमारा अतीत हमारे साथ है। हमें इसे संजोकर रखना है।

विकास को लेकर उनकी दृष्टि एक दम साफ है। उनका सपना है कि विकसित भारत, शहरों का देश नहीं होकर समृद्ध गाँवों का तंत्र होगा। वह दूर-चिकित्सा, दूर-शिक्षा तथा ई-कॉमर्स से संपन्न होगा। जैव प्रौद्योगिकी, जैव विज्ञान तथा कृषि विज्ञान और औद्योगिक विकास से नए भारत का उदय होगा। राजनैतिक नेताओं को इस भावना से कार्य करना होगा कि राष्ट्र का स्थान व्यक्तिगत हितों तथा राजनैतिक पार्टियों से ऊपर होता है।

बच्चों के बीच

अब्दुल कलाम के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष उनका बच्चों की क्षमताओं में अटूट विश्वास करना है। बड़े वैज्ञानिक तथा राष्ट्रपति जैसे महत्त्वपूर्ण पद पर रहते हुए देश के विभिन्न भागों में जाकर बच्चों से बातें करना उनके प्रश्नों के उत्तर देना, उनके मन में देश के प्रति प्रेम व निष्ठा उत्पन्न करना, देश व काल की वास्तविकताओं से अवगत कराना, बच्चों की आँखों में, मजबूत व विकसित भारत के सपने पिरोना किसी सामान्य व्यक्ति के बूते की बात नहीं है। अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकाल कर देश के हजारों बच्चों के बीच गए हैं। बच्चों की बातें सुनी हैं। उनके सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। कलाम जिस सहजता से विज्ञान का परिचय बच्चों से करवाते हैं वह अनुकरणीय है। एक बार एक बच्चे ने उनसे पूछा दुनियाँ का पहला वैज्ञानिक कौन रहा होगा? कलाम ने कहा कि जिज्ञासु प्रश्न ही विज्ञान की नींव है। बच्चे ही प्रश्न अधिक पूछते हैं अत: विश्व का पहला वैज्ञानिक कोई बच्चा ही रहा होगा। कलाम का बच्चों से कहना है कि प्राचीन भारत ज्ञान से परिपूर्ण समाज था और कई बौद्धिक अभियानों, विशेषकर गणित, चिकित्सा और खगोल विद्या के क्षेत्र में भारत ने विश्व का नेतृत्व किया है। उच्च तकनीक के क्षेत्र में सस्ता श्रम उपलब्ध कराने की बजाय भारत को एक बार फिर ज्ञान के क्षेत्र में परम शक्ति बन कर उभरने के लिए पुनर्जागरण करना है।

शिक्षक पद सर्वोपरी

सर्वपल्ली राधाकृष्णन की तरह अब्दुल कलाम भी शिक्षक को समाज का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं। प्रसिद्ध होने के बाद भी वे अपने स्कूल व महाविद्यालय के शिक्षकों शिव सुब्रह्मण्य अय्यर, टी. तोताद्री आयंगर के साथ ही कर्मस्थली पर सिखाने वाले वैज्ञानिक डॉ.डी.एस.कोठारी, डॉ.विक्रम साराभाई, प्रोफेसर सतीश धवन, डॉ. ब्रह्मप्रकाश आदि को श्रद्धापूर्वक याद करते रहे हैं। राष्ट्रपति के रूप में जब कलाम एक विश्वविद्यालय में आमन्त्रित थे। मंच पर रखी कुर्सियों में उनकी कुर्सी उपकुलपति व अन्य शिक्षकों से कुछ बड़ी थी। कलाम ने उस कुर्सी पर बैठने से मना कर दिया। घटना छोटी थी मगर उनके मन में शिक्षक के प्रति कितना सम्मान था यह सहज ही प्रकट होता है। हमारे यहाँ तो कोई वार्ड पंच बनते ही बड़ी कुर्सी की अपेक्षा करने लगता है।

भारत सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार के पद से मुक्ति माँग कर अन्ना विश्वविद्यालय में पढ़ाना प्रारम्भ करना उनकी मजबूरी नहीं शिक्षक पद के गौरव की अनुभूति करना था। कहते हैं तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी ने राष्ट्रपति पद हेतु कलाम साहब की सहमति लेने हेतु फोन किया तब वे कक्षा में पढ़ा रहे थे। कक्षा छोड़ कर फोन पर नहीं आएँ। कक्षा के बाद में स्वयं ने फोन कर बात की। राष्ट्रपति पद हेतु भी तुरन्त ही सहमति नहीं दी थी। मित्रों ने कहा कि उस पद पर रह कर वे अपने विचारों को देश के अधिक लोगों तक पहुँचा सकेंगे, तभी पद स्वीकार किया, ऐसा उन्होंने करके दिखाया।

कलाम द्वारा शिक्षकों को 11 सूत्री शपथ

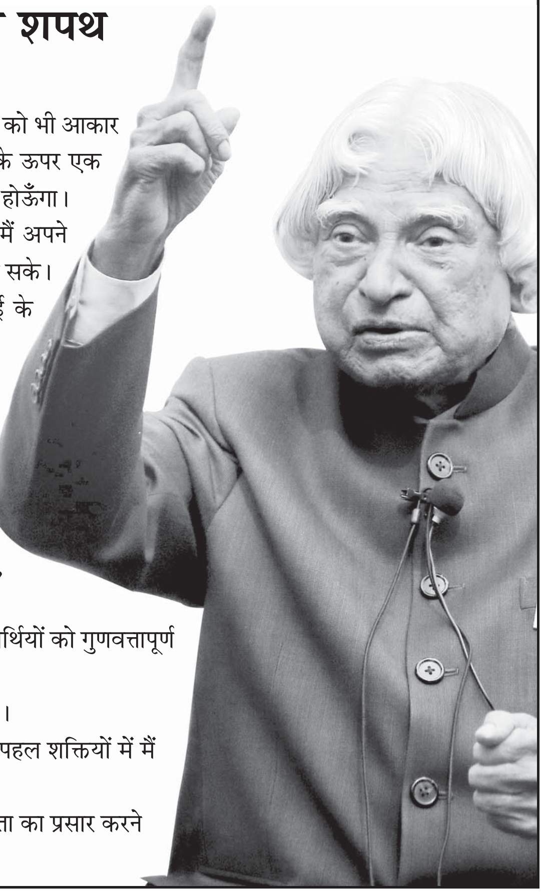

1. सर्वप्रथम मैं शिक्षण से प्यार करता हूँ। शिक्षण मेरी आत्मा होगी।
2. मैं यह जानता हूँ कि मैं न केवल शिक्षार्थियों को बल्कि जोशीले युवाओं को भी आकार देने के लिए जिम्मेदार हूँ, जो पृथ्वी के नीचे, पृथ्वी पर और पृथ्वी के ऊपर एक शक्तिशाली संसाधन हैं। शिक्षण के महान उद्देश्य के लिए मैं जिम्मेदार होऊँगा।
3. मैं एक सर्वश्रेष्ठ अध्यापक बनने की कोशिश करूँगा जिसके लिए मैं अपने विशेष शिक्षण तरीकों को अपनाऊँगा जिसके सर्वोत्तम प्रदर्शन किया जा सके।
4. सभी शिक्षार्थियों के साथ मेरा व्यवहार माता, पिता, बहन और भाई के समान दयालु व स्नेहपूर्ण रहेगा ।
5. मैं अपने जीवन को इस प्रकार ढालूँगा कि मेरा जीवन अपने आप में मेरे शिक्षार्थियों के लिए एक संदेश हो ।
6. मैं अपने शिक्षार्थियों और बच्चों के प्रश्न पूछने और जानकारी की भावना विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करूँगा ताकि वे एक जागरूक प्रबुद्ध नागरिक के रूप में उभरें ।
7. मैं सभी शिक्षार्थियों के साथ समान व्यवहार करूँगा और किसी भी धर्म, समुदाय या भाषा के कारण किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करूँगा ।
8. मैं अपनी शिक्षण क्षमताओं को लगातार बढ़ाता रहूँगा ताकि अपने शिक्षार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकूँ।
9. मैं बड़ी शान से अपने शिक्षार्थियों की सफलताओं का जश्न मनाऊँगा ।
10. मैं जानता हूँ कि एक शिक्षक होने के नाते राष्ट्र के विकास की सभी पहल शक्तियों में मैं एक महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा हूँ ।
11. मैं स्वयं को महान विचारों से भरने और सोच तथा विचारों की महानता का प्रसार करने के लिए प्रयासरत रहूँगा।

राष्ट्रपति पद से मुक्त होने के बाद, पूर्व राष्ट्रपति की बजाय कार्यरत प्रोफेसर कहलाने की इच्छा रखना कोई महान व्यक्ति ही कर सकता है। अपनी मृत्यु तक वे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों, भारतीय प्रबंधन संस्थानों के साथ अमेरिका के दो विश्वविद्यालयों में भाषण देते रहे। शिलाँग भी वे शिक्षक की भमिका में ही गए थे। कलाम का आडम्बरहीन, सरल जीवन भारतीय ऋषियों की जीवनशैली को पुन: जीवित करना जैसा है। राष्ट्रपति भवन में रहते हुए अपने परिवार के मेहमानों के खाने का खर्चा अपने वेतन में से भरना, चाणक्य द्वारा व्यक्तिगत बात करते समय राजकीय दीप को बुझा कर स्वयं का दीप जलाने की घटना की याद दिलाता है।

अध्यापकों से कलाम की अपेक्षा है कि वे छात्रों को व्यापारिक दृष्टि से नहीं देखकर राष्ट्र के भावी निर्माता के रूप में देखें। शिक्षक स्वयं उदाहरण बन कर बच्चों को प्रेरित करेंगे तभी बच्चों का स्वस्थ विकास सम्भव होगा। केवल होशियार बच्चों की ओर ही ध्यान नहीं देकर सभी बच्चों को उनकी क्षमता के अनुसार आगे बढ़ने को प्रेरित करे। ऐसा होने पर शिक्षा, युवकों में गरिमा तथा आत्मविश्वास का संचार कर सकती है और वे अच्छे नागरिक सिद्ध हो सकते हैं। कलाम देश का माहौल सही करने के लिए हर वर्ग के लोगों को शपथ दिला कर प्रेरित किया करते थे। कई अवसरों पर कलाम ने शिक्षकों को 11 सूत्री शपथ दिलाई थी तथा आशा की कि देश के सभी शिक्षक उनका निर्वाह करें।

विज्ञान तथा अध्यात्म को एक ही सिक्के के दो पहलू मानने वाले डॉ.कलाम ने अपने अनुभवों से यह निष्कर्ष निकाला कि स्वप्नदृष्टा कभी बूढ़े नहीं होते और नहीं मरते हैं। अब्दुल कलाम, स्वामी विवकानंद से प्रभावित थे और स्वामी जी के कार्य को आगे बढ़ाते हुए युवावर्ग को सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करते रहे। संन्यासी होने के कारण स्वामी विवेकानंद प्रेरणा देने का कार्य किया जबकि कलाम ने प्रेरणा देने के साथ साथ खुद कार्य करके भी बताया कि भारत आज भी विश्व को नेतृत्व देने की क्षमता रखता है यदि व्यवस्थाओं को सही कर लिया जाये। अपनी मृत्यु से पूर्व वे संसद में बढ़ते अनावश्यक गतिरोध से चिन्तित थे। वे युवाओं से उसका हल जानना चाहते थे। संसद का सही संचालन ही कलाम को देश की सही श्रद्धाजंली होगी। ❑

(विज्ञान एवं बाल विषयक लेखक)

आजादी का सातवाँ दशक और शिक्षा की चुनौतियाँ

पारम्परिक ज्ञान की ओर ध्यान न देना और शिक्षा को बाजार की शक्तियों के हवाले करना देश के लिए काफी खतरनाक है। बाजारवादी नुस्खों में कई निहितार्थ छिपे हैं। एक तो यह सरकार ने मान लिया है कि देश के सभी बच्चों को शिक्षित करने का काम उन्हीं शक्तियों को करना है। राष्ट्रीय अध्यापक परिषद को सुदृढ़ करना तथा शिक्षक की भावभूमि तैयार करने की आवश्यकता है। शिक्षा की विभेदकारी नीति के विरोध करने का अब समय आ गया है। स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ ही भारतीय शिक्षा को लेकर अनेक जद्दोजहद चलती रही। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने सार्वजनिक शिक्षा के विस्तार के लिए अनेक प्रयास किए। यह और बात है कि इन प्रयासों में अनेक खामियाँ थी, जिन्हें दूर करने का प्रयास होना चाहिए।

❑ बजरंगी सिंह

आज से दो वर्ष बाद हम देश की आजादी की सातवें दशक की वर्षगाँठ मनाने जा रहे हैं। ऐसे में तय है कि हमारे सामने शिक्षा क्षेत्र की कई नयी चुनौतियाँ सामने होंगी। उसके लिए हमें हर तरह से तैयार रहना होगा तभी देश को हम ऐसी शिक्षा दे सकेंगे, जिसको हम गर्व से कह सकेंगे कि यह हमारी अपनी शिक्षा नीति है। यानी ऐसी शिक्षा नीति जिसमें भारतीयता की महक के साथ स्वाधीनता के मूल्यों की परख और उसके मूल्यों के संरक्षण की भावना निहित हो। आजादी का मूल्य हम समझ सकें और लोकतांत्रिक गुणों को और अधिक विकसित कर सकें तभी हम एक उन्नत भारत और आजाद भारत का सपना सही मायने में पूरा कर सकेंगे। यदि हम थोड़ा पीछे मुड़ कर देंखे तो पता चलता है कि आज भी न तो हम अपनी मातृ भाषा तय कर पाये और न ही यह तय कर सके कि हमें अपनी वर्तमान व भावी पीढ़ी को कैसी शिक्षा देनी है। युवा वर्ग को देश का भविष्य माना जाता है किन्तु आजादी के बाद इतनी लम्बी यात्रा तय कर लेने के बाद भी हम अपने देश के युवाओं को ऐसी शिक्षा नहीं दे सके जिसके बल पर वह अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

दुर्भाग्य है कि हमारे देश का युवा रोजगार पाने के लिए दूसरे देशों में बराबर पलायन करता जा रहा है फिर भी हमारे नीतिकारों और सरकारों ने इस ओर ध्यान नही दिया। उल्टे वह भाषा के नाम पर हीनभावना का शिकार हो रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि भारत एक परमाणु सम्पन्न देश है। उसने विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में निश्चय ही बहुत बड़ी तरक्की की है। यही नहीं भारत आज अंतरिक्ष के मामले में एक व्यापारिक देश बन चुका है किन्तु अभी कई क्षेत्रों में चुनौतियाँ बनी हुई है। सबसे बड़ी चुनौती तो हमारे सामने शत प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त करना है।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का परिदृश्य एकदम बदल गया है। हालांकि अब भी बहुत कुछ बदलना बाकी है। अगर इस ऐतिहासिक परिदृश्य पर ध्यान दें तो 21वीं सदी में भारत की शिक्षा पर एक नजर डालनी होगी। इस बात का भी जायजा लेना होगा कि तकनीकी, चिकित्सा और व्यावसायिक शिक्षा में किस तरह के परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। बस शिक्षा उपलब्ध कराने पर जरूर जोर दिया गया किन्तु सरकारी तंत्र की मनमानी और शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण शिक्षा को वह दर्जा हासिल नहीं हो सका जो उसे मिलना चाहिए था। यही वजह है कि प्राथमिक शिक्षा दोषपूर्ण और अनियमितता की शिकार है। आश्चर्य की बात तो यह है कि हम प्राथमिक शिक्षा को ही अभी तक दुरुस्त नहीं कर सके जबकि हमारे संविधान निर्माताओं ने यह तय किया था कि सबको सार्वभौमिक नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराई जाय। इस दिशा में

हम अभी बहुत पीछे हैं।

जहाँ तक भाषाओं की जानकारी का सवाल है, हमें एक नयी राष्ट्रीय व्यवस्था विकसित करनी होगी। त्रिभाषा नीति को हमने न जाने क्यों अचानक बीच में ही बन्द कर दिया जबकि उसे पूरी शक्ति से आगे बढ़ाया जाना चाहिए था। हिन्दी भाषा के साथ अंग्रेजी की भी शिक्षा दी जानी गलत नहीं है बल्कि क्षेत्रीय भाषाओं को उनके क्षेत्रों में अहमीयत मिलनी ही चाहिए। क्योंकि निज भाषा की उपेक्षा करके कोई राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता है। लेकिन आजादी के बाद ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया हम इस दिशा में मजबूती से नहीं बढ़ सके। परिणाम यह हुआ कि आज हम अपनी भाषा-बोली सबसे कटते जा रहे हैं। अंग्रेजी का भूत आज हमारे ऊपर इस कदर सवार हो चुका है कि भाषा ही नहीं संस्कृति और विचारों से भी हम कंगाल होते जा रहे हैं।

भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली और दर्शनशास्त्रों का अवलोकन करने से यह सिद्ध होता है कि हमने सहस्त्रों वर्ष पूर्व ही शिक्षा के माध्यम से निर्धनता निवारण, स्वास्थ्य का रक्षण, लैंगिक समानता तथा शासन-प्रशासन में सुधार, सब के लिए न्याय की सुलभता इन सभी को एकात्म भाव से देखना समझ गए थे और उसे सार्थक किया था। दुर्भाग्य है कि आज हम अपने प्रचीन ज्ञान-विज्ञान तथा सांस्कृतिक धरोहरों से अनभिज्ञ होते जा रहे हैं और हमें अपने स्वरूप के प्रति हीन भावना जाग्रत हो रही है। मैकाले का यह कथन हमारे अनुभूत ज्ञान पर एक गहरी चोट है। उसका कथन है यूरोप की पुस्तकालय की एक आलमारी का साहित्य भारत के समग्र साहित्य से मूल्यवान है।

मैकाले की टिप्पणी न केवल मिथ्याभिमान है अपितु तथ्यों से परे भी है। भारत के बुद्धिजीवियों पर एक गहरी चोट भी है। तब से अब तक शिक्षक और युवा पीढ़ी हीनभावना से ग्रस्त है। इस भावना से छुटकारा पाने के लिए शिक्षा जगत को भारत वर्ष की वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों में राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं सांस्कृतिक गौरव को पुनः जाग्रत और स्थापित करना होगा एवं समाज में सतत युवा हित करने हेतु संकल्प लेना होगा। दुर्भाग्य है कि अपने स्व से हम बराबर कटते जा रहे हैं। महर्षि अरविन्द ने कहा था कि युग-युगान्तरों से भारत की ओजस्वी वाणी कोई अन्तिम शब्द नहीं है। वह जीवित है उसे संसार और मानवता को बहुत कुछ देना है। हमारी संस्कृति, हमारी पाठ्यचर्या तथा पाठयक्रम का भाग बनना चाहिए। हीन भावना से मुक्ति वैकल्पिक शिक्षा का प्रथम सोपान है। आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्यीकरण का प्रभाव, वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन तथा मन-मस्तिष्क को प्रदूषित करता जा रहा है। आधुनिकता के नाम पर प्राचीन बुद्धिमत्ता से बिछोह हो गया और देश की धरती से संबंध विच्छेद कर दिया गया है। यूनेस्को के कथनानुसार किसी देश की शिक्षा का संबंध उस देश की संस्कृति के संरक्षण तथा विकास के लिए होना चाहिए। हमने इसका अनुसरण नहीं किया। उल्टे वैश्वीकरण के नाम पर पाश्चात्यीकरण का अन्धानुकरण कर रहे हैं, जो शिक्षा के लिए बहुत बड़ी चुनौती है।

पारम्परिक ज्ञान की ओर ध्यान न देना और शिक्षा को बाजार की शक्तियों के हवाले करना देश के लिए काफी खतरनाक है। बाजारवादी नुस्खों में कई निहितार्थ छिपे हैं। एक तो यह सरकार ने मान लिया है कि देश के सभी बच्चों को शिक्षित करने का काम उन्हीं शक्तियों को करना है। राष्ट्रीय अध्यापक परिषद को सुदृढ़ करना तथा शिक्षक की भावभूमि तैयार करने की आवश्यकता है। शिक्षा की विभेदकारी नीति के विरोध करने का अब समय आ गया है। स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ ही भारतीय शिक्षा को लेकर अनेक जद्दोजहद चलती रही। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने सार्वजनिक शिक्षा के विस्तार के लिए अनेक प्रयास किए। यह और बात है कि इन प्रयासों में अनेक खामियाँ थी, जिन्हें दूर करने का प्रयास होना चाहिए। भारत की प्राचीन शिक्षा में गुरु का स्थान बड़ा ही गौरव का था। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रही। मातृभाषा की उपेक्षा होती गई। आजादी के बाद गाँधी जी ने कहा था कि ''दुनिया को खबर कर दो कि गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता, गाँधी अंग्रेजी भूल चुका है।'' गाँधी यह जानते थे कि राजनीतिक स्वतंत्रता देश की सम्पूर्ण स्वाधीनता नहीं है। भाषाई गुलामी से मुक्त किए बिना देश पराधीनता की गिरफ्त में आ जायेगा। आजादी के बाद कितने नेताओं ने इस सत्य को पहचाना?

यह बात आज हमारे लिए चिन्ता की इसलिए है कि बाजार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, मल्टीप्लेक्सों, भव्य होटलों और विशालकाय मॉल्स के जरिए जिस ठाट-बाट से भारत में आ रहा है-वह उन्हीं आकाओं की वर्षों पहले सोची-समझी चाल का परिणाम है। यहाँ मैं यह बताना चाहता हूँ कि हिन्दी के विस्थापन में समस्त भारतीय भाषाओं का विस्थापन छिपा है। देशी भाषाओं और हिन्दी के बीच परस्पर आशंका ही उनका वह अस्त्र है, जिससे वे इस विभेद मूलक प्रवृत्ति में सेंध लगा सकें। अंग्रेजी आज जिस जगह पहुँची है, वह प्राथमिक शिक्षा की क्रमबद्ध योजना के माध्यम से पहुँची है। आजादी के तत्काल बाद देशी भाषाओं को राष्ट्रभाषा के नाम पर झगड़ता छोड़ कर वह चुपचाप उस पीढ़ी को तैयार करने में जुट गयी थी, जो आगे चल कर स्वयं ही उसका उद्देश्य सिद्ध कर देने वाली सिद्ध होगी, वही हुआ। मध्य-निम्न वर्ग और यहाँ तक कि गरीबों के बच्चे भी आज अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पा रहे हैं-वे शेष जनता से पृथक हो चुके हैं, यानी एक वर्ग वह, जो अंग्रेजी पढ़ा और दूसरे में शेष सारी जनता, जो अंग्रेजी नहीं पढ़ी है। ज्ञान, योग्यता, सेवा के अवसर-सभी कुछ आज भाषा में केन्द्रित कर दिए गए है। डी-क्लास होने के बाद उनके भीतर से राष्ट्रीय भावना चुन-चुन कर निकालना आसान होता है। इसी तरह उसे डी-नेशन किया गया। इसलिए सभी भारतीय भाषाओं को आज एकजुट होना जितना आवश्यक है, उतना इतिहास में कभी न था। ❑

(स्वतन्त्र लेखक)

शिक्षा से जुड़ा है स्वतन्त्रता का भविष्य

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

राजनीतिशास्त्र में स्वतन्त्रता की तकनीकी परिभाषा क्या है यह मैं नहीं जानता मगर अपने अनुभव के आधार पर मेरा मानना है कि स्वतन्त्रता का सरलतम अर्थ प्रशासन में समान भागीदारी है। प्रशासन में समान भागीदारी होने पर ही विकास के समान अवसर प्राप्त हो सकते हैं। हमारे नीति निर्धारकों ने देश के प्रत्येक वयस्क नागरिक को समान मताधिकार तथा अभिव्यक्ति का अधिकार देकर प्रशासन में समान भागीदारी होने का अहसास कराया है। आज देखना यह है कि क्या मताधिकार का समान अधिकार, विकास के समान अवसरों में परिणत हो पाया है?

असमानता का प्रसार

अभी हाल ही में प्रकाशित हुए जातीय जनगणना के आँकड़े देश के नागरिकों को विकास के समान अवसर उपलब्ध होने की पुष्टि नहीं करते। देश में अरबपतियों की संख्या बढ़ रही है मगर गाँवों में रहने वाला हर तीसरा परिवार भूमिहीन है। ये परिवार आजीविका के लिए दूसरों के यहाँ मजदूरी करने को मजबूर हैं। ग्रामीण क्षेत्र के लगभग ग्यारह करोड़ लोग वंचित वर्ग में माने गए हैं। स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता का सही स्वरूप अभी देश में नहीं उभर पाया है। जिस देश के ऋषियों का उद्घोष ''सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:'' रहा हो, वहाँ स्वतन्त्रता के सातवें दशक में करोड़ों लोगों को दरिद्रता का जीवन जीने को मजबूर होना स्वतन्त्रता के अर्थ पर प्रश्न चिह्न लगाता है।

लगता है महात्मा गाँधी की आशंका सही सिद्ध हुई है। महात्मा गाँधी ने देश स्वतन्त्र होने से पूर्व ही कह दिया था कि मैकाले पद्धति की शिक्षा से निकले लोग स्वराज का अर्थ नहीं समझेंगे और वे प्रजा को परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। महात्मा गाँधी दूरदर्शी थे उन्होंने बहुत पहले ही भाँप लिया मगर हम अभी तक उसी शिक्षा पद्धति को गले लगाये हुये हैं। मातृभाषा के तिरस्कार का परिणाम है कि आज अंग्रेजी पूरे देश के कानून, उद्योग व उच्च शिक्षा की भाषा बन चुकी है। देश, इंडिया व भारत दो भागों में बँटा हुआ है। भारत मेहनत कर रहा है मगर फल इंडिया खा रहा है।

कभी कभी तो ऐसा लगता है कि स्वतन्त्रता के नाम पर केवल शासक वर्ग बदला है, शासन नहीं बदला। जनप्रतिनिधियों का व्यवहार मतदान के पूर्व तथा मतदान के बाद एकदम भिन्न होता है। जनता से वसूले टैक्स को जनहित की ओट में प्रशासक अपने हित में खर्च कर रहे हैं। भ्रष्टाचार कह कर इसकी आलोचना की जाती रही है मगर यह कम होने के बजाय बढ़ता ही रहा है। यह भ्रष्टाचार ही समाज में फैली असमानता का बीज है।

भ्रष्टाचार की जननी एकांगी शिक्षा

आचार्य महाप्रज्ञ वर्तमान एकांगी शिक्षा को

महात्मा गाँधी की आशंका सही सिद्ध हुई है। महात्मा गाँधी ने देश स्वतन्त्र होने से पूर्व ही कह दिया था कि मैकाले पद्धति की शिक्षा से निकले लोग स्वराज का अर्थ नहीं समझेंगे और वे प्रजा को परेशान करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। महात्मा गाँधी दूरदर्शी थे उन्होंने बहुत पहले ही भाँप लिया मगर हम अभी तक उसी शिक्षा पद्धति को गले लगाये हुये हैं। मातृभाषा के तिरस्कार का परिणाम है कि आज अंग्रेजी पूरे देश के कानून, उद्योग व उच्च शिक्षा की भाषा बन चुकी है। देश, इंडिया व भारत दो भागों में बँटा हुआ है। भारत मेहनत कर रहा है मगर फल इंडिया खा रहा है। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि स्वतन्त्रता के नाम पर केवल शासक वर्ग बदला है, शासन नहीं बदला।

भ्रष्टाचार का कारण मानते थे। उनका कहना था कि भावात्मक विकास के बिना होने वाला बौद्धिक विकास भ्रष्टाचार का सहायक है। भ्रष्टाचार को रोकने की क्षमता बौद्धिक विकास में नहीं होती। नैतिकता का बुद्धिविकास के साथ बहुत कम सम्बन्ध होता है। आज देश में आम जनता की परेशानी का कारण बौद्धिक वर्ग ही है। पढ़ लिख कर इंजिनियर, डॉक्टर, प्रशासक बन जनता की सेवा करने के बजाय जनता को लूटने का कार्य करने लगते हैं। जनता के मतों से बना जन प्रतिनिधि जनता के साथ होने का नाटक करता है मगर भीतर से लूटने वालों के साथ ही होता है। अपने काम पर पर्दा डालने हेतु ये ठेकेदार को बीच में खड़ा कर लेते हैं।

यही कारण है कि अच्छे आवासों में पूर्ण सुविधा से रहने वालों में अधिकांश भाग प्रशासन से जुड़े लोगों का ही है। जनता दयनीय स्थिति में उनकी कृपा पर जीने को मजबूर है। जनता दु:खी हो एक दल की सरकार को हरा दूसरे को सत्ता सौंपती है मगर कोई अन्तर नहीं आता, फिर निराश होकर पहले वाले को पुन: चुनने को मजबूर हो जाती है। चुनाव में धन का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि प्रजातन्त्र के नाम पर, शासन कुछ घरानों या समूहों की जागीर बन कर रह गया है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जो वादे किए गए आज झूठे लगने लगे हैं।

महाप्रज्ञ कहते थे कि नैतिकता का सम्बन्ध भावनात्मक विकास के साथ होता है। नैतिकता का पाठ पढ़ाकर उसके प्रति आस्था पैदा नहीं हो सकती। नैतिकता के प्रति आस्था उत्पन्न करने हेतु सघन प्रशिक्षण की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार को नियन्त्रित करने हेतु परिस्थिति और मन:स्थिति दोनों को बदलना होगा। परिस्थिति व्यक्ति को सीधे प्रभावित नहीं करती, मन:स्थिति को प्रभावित करती है। जब मन के भाव बदलते है तो वे बुद्धि, विवेक पर आवरण डाल देते हैं। अपने लालच के लिए व्यक्ति कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। रिश्वतखोर अफसरों, राजनेताओं के किस्से हम रोज पढ़ते हैं। आज जनता के धन की चोरी करना अपराध नहीं है केवल पकड़ा जाना ही अपराध है।

प्रगाढ़ हो नैतिकता

जनता के धन की चोरी रोकने हेतु नैतिकता को प्रगाढ़ करना होगा। प्रश्न यह है कि नैतिकता प्रगाढ़ कैसे हो? महाप्रज्ञ कहते थे कि नैतिकता प्रगाढ़ करने हेतु बच्चों को उसके स्वरूप का ज्ञान कराया जाये। उसके बाद नैतिकता के साधक व बाधक तत्त्वों को समझाया जाये। इसके बाद नैतिकता के साधक तत्त्वों को सबल व बाधक तत्त्वों को निर्बल करने का अभ्यास कराया जाये।

क्या वर्तमान शिक्षा यह सब कर पायेगी? प्रसिद्ध कवि नंद चतुर्वेदी का अनुभव है कि कोई स्कूल या पोथी या शिक्षक नजर नहीं आता जो निरन्तर समाज में व्याप्त असमानता की शिक्षा देता हो ? महाप्रज्ञ का मानना था कि असमानता देश की प्रतिष्ठा ही कम नहीं करती अपितु स्वतन्त्रता को भी संकट में डाल देती है।

आज देश में विकास दर के बढ़ने की बात की जाती है। विकास पहले भी हुआ मगर जनगणना बताती है उसका लाभ ग्रमीण क्षेत्रों व वंचित वर्गों तक नहीं पहुँचा। आगे भी ऐसा ही विकास होता है तो उससे देश की स्वतन्त्रता पुष्ट नहीं होगी अपितु कमजोर ही होगी। अत: आवश्यकता केवल विकास करने की नहीं अपितु विकास का लाभ निम्नतम स्तर तक पहुँचाये जाने की है। जनता को दान पर जिन्दा रखने के बजाय आजीविका कमाने योग्य बनाने की है।

महाप्रज्ञ का मानना था कि जिस देश का शीर्ष नेतृत्व भ्रष्टाचार को नियन्त्रित करने को संकल्पित होता है तो सफलता की राह निकल ही आती है। आज भारत सरकार के मुखिया श्री नरेन्द्र मोदी ने, न खाऊँगा और न ही किसी को खाने दूँगा की घोषणा कर भ्रष्टाचार को नियन्त्रित करने का संकल्प लिया है। उसका असर भी दिखाई देने लगा है। आज मोदी सरकार के मंत्री, अफसरशाही को नियन्त्रित करते दिख रहे हैं। पहले मंत्री मलाईदार मंत्रालय हथियाकर मलाई खाने में मस्त हो जाते थे। जनता अफसरशाही की दया पर जिन्दा रहने को मजबूर रहती थी।

मोदी सरकार नई शिक्षानीति बनाने जा रही है। आशा की जानी चाहिए कि वह भावात्मक शिक्षा को प्रोत्साहन देने की नीति बनायेगी। नई शिक्षानीति समानता व समरसता उत्पन्न करने वाली होगी। आज सर्वाधिक असमानता तो शिक्षा के क्षेत्र में ही व्याप्त है। जितना पैसा, वैसी शिक्षा। सरकार ने शिक्षा की विषमता को स्वीकार कर कुछ चुनिंदा बच्चों को अच्छे शिक्षा साधन देने का मार्ग चुन रखा है। आशा करनी चाहिए कि नई शिक्षा नीति विषमता को दूर करने वाली होगी। ❑

(विज्ञान एवं बाल विषयक लेखक)

वास्तविक स्वतन्त्रता – भारतीय शिक्षा द्वारा ही सम्भव

❑ **डॉ. रेखा भट्ट**

“**सा**विद्या या विमुक्तेयं” जैसे विस्तृत एवं पवित्र उद्देश्य से परिपूर्ण ज्ञान ही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा को प्रांत, भाषा और समुदाय की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। शिक्षा से ही व्यक्ति, समाज में व्याप्त निहित स्वार्थ, द्वेष और घृणा से मुक्त हो सकता है। शिक्षित व्यक्ति ही स्वतन्त्रता का विवेकपूर्ण उपयोग करता है। सार्वजनिक हित में स्वतंत्रता के अधिकार के प्रति जागरूक होने के साथ अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन भी करता है। यही स्वतंत्रता लोगों को आपस में जोड़ती है और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के प्रति भी सजग करती है।

भारत में पुरातन काल से ही शिक्षा व्यवस्था-ज्ञान एवं अध्यात्म आधारित रही है। यह विद्यार्थी के विचारों को मुखरित कर उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करती थी। साथ ही उसे अपने अधिकारों के प्रति सावचेत करते हुए सामाजिक दायित्वों के प्रति भी सजग करती थी। हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली में व्यक्ति, बन्धन मुक्त जीवनयापन करता था। भारतीय शिक्षा केवल रोजगार द्वारा अर्थोपार्जन का साधन नहीं थी। यह जीवन जीने की कला सीखने तथा मानवता के गुण समाहित करने का भी माध्यम थी। भारत में नालंदा व तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय थे जिनमें कई देशों के छात्र अध्ययन करने आते थे। इनमें विश्व के सभी विद्यार्थियों को वेद-वेदांग के अतिरिक्त साहित्य, दर्शन, व्याकरण, चिकित्सा, इतिहास, भूगोल आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। गुरु-शिष्य परम्परा में दीक्षित छात्र, राष्ट्र व समाज हित समर्पण में ही अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करते थे। इस समय सभी प्रकार की व्यावहारिक व तकनीकी शिक्षा भी उन्नत थी। भारतीय शिक्षा अपने उच्च स्तरीय ज्ञान-विज्ञान के लिए कई सदियों तक विख्यात रही है। शिक्षा के माध्यम से ही भारतीय सभ्यता व संस्कृति का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार-प्रसार सम्भव हुआ था।

मुगलकाल में भी हमारी यह शिक्षा व्यवस्था किसी न किसी रूप में प्रचलित एवं सुरक्षित रही, परन्तु 16वीं शताब्दी में अंग्रेजों का भारतवर्ष में राजनैतिक प्रभुत्व बढ़ने लगा। 17वीं शताब्दी में ब्रिटिश विचारकों ने यह मान लिया कि प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं संस्कृति को समाप्त करके ही ब्रिटिश शासन, भारत में अपना साम्राज्य स्थापित एवं सुरक्षित कर सकता है। इसके लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय भाषा और भारतीयता को उपेक्षित किया जाने लगा। भारतीयों को सभ्य व उन्नत बनाने के नाम पर अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था को थोपा गया। इस प्रकार शिक्षित भारतीय, मानसिक रुप से अंग्रेज बनते गये। सरकारी पदों पर शिक्षित भारतीयों की नियुक्तियों द्वारा उनके श्रम और बुद्धि का दोहन किया जाने लगा। सरकारी

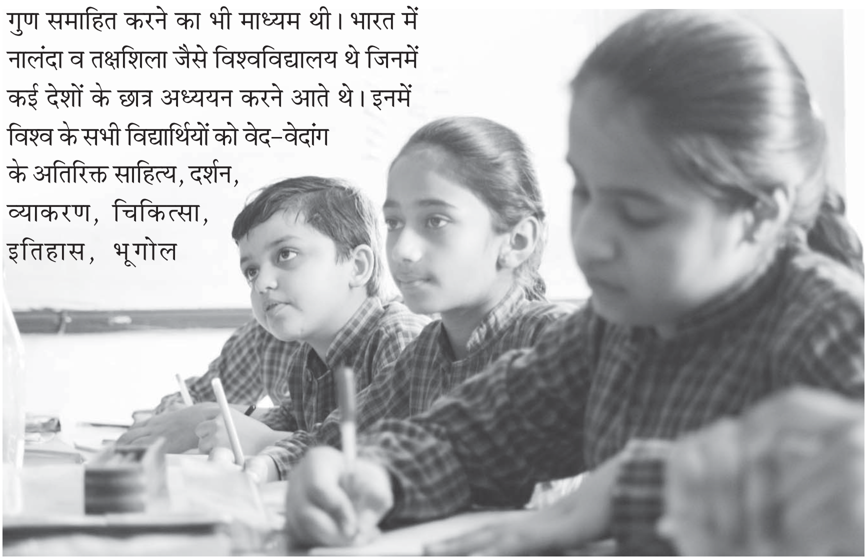

विदेशी भाषा में भारतीय बालकों के मस्तिष्क में भरी गई शिक्षा, रोजगार तो दे सकती है किन्तु विद्यार्थी मे आत्म शक्ति व आत्म गौरव का विकास नही कर सकती है। यह शिक्षा देश में गरीबी, भुखमरी, आर्थिक अभाव, स्व उद्यमिता, एवं आत्मनिर्भरता के विकल्प नहीं ढूँढ सकती। विदेशी शिक्षा प्रणाली द्वारा भारतीय बालकों के विचारों में आत्म गौरव व राष्ट्रीयता का भाव कदापि नहीं पनप सकता है। इस प्रकार इस शिक्षा के प्रभाव में पश्चिम की उदारवादी व अतिवादी विचारधारा को ही अधिकांश लोग स्वतन्त्रता मानते हैं। पश्चिम की अनिंरकुशता व प्रतिबन्धों के अभाव को ही स्वतंत्रता समझा जाने लगा है, जबकि मूलतः भारतीय शिक्षण पद्धति द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता व्यक्ति को अपने प्रति और समाज के प्रति भी उत्तरदायी बनाती है।

नौकरियों द्वारा अंग्रेजी पढ़े लिखे भारतीयों की आर्थिक स्थिति में सुधार देख, आम जनता का रुझान भी अंग्रेजी शिक्षा की और बढने लगा। इस प्रकार लगभग 150 वर्षों में धीरे-धीरे मातृभाषा के साथ-साथ भारतीय शिक्षा पद्धति भी गौण होकर विलुप्त होती चली गई।

'स्वतन्त्रता' अपने आप में एक व्यापक और विस्तृत अर्थ रखती है। सतही तौर पर, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होना ही स्वतंत्रता है किन्तु शिक्षा द्वारा मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर, स्वत: विचार करने की क्षमता प्राप्त होना ही वास्तविक स्वतन्त्रता है। ब्रिटिशकाल में भारतीयों को मानसिक रूप से पराधीन बनाने के लिए प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समूल नष्ट किया गया। इससे भारतीयों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक सभी प्रकार की स्वतन्त्रता का मार्ग अवरूद्ध कर दिया। परम्परागत भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर रोक द्वारा सम्पूर्ण जनसमुदाय के मन-मस्तिष्क पर भी नियन्त्रण कर लिया गया। सन् 1850 के बाद देश में कई सामाजिक सुधार आन्दोलन तथा राष्ट्रव्यापी स्वतन्त्रता आन्दोलन हुए। सन् 1947 में राजनैतिक स्वतन्तत्रा प्राप्ति के साथ ही हमें हमारी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में भारतीयता के अनुरूप आमूलचूल परिवर्तन करना था, परन्तु तत्कालीन राजनैतिक नेतृत्व ने इस दिशा में उदासीनता बनाये रखी।

स्वतंत्रता प्रासि के बाद शिक्षा नीति में सुधार हेतु कोई प्रयास सफल नहीं हुआ। शिक्षा आयोग, स्थापित होते गए, शिक्षकों के प्रशिक्षण व पाठ्यक्रम में सुधार के प्रयास हुए, शिक्षण संस्थानों के अनुदान में वृद्धि की गई। व्यवसायिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा, पिछडे वर्ग व जातियों की शिक्षा में वृद्धि हुई। किन्तु शिक्षण स्तर एवं शिक्षा के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति में कोई सुधार नही हो पाया है। देश में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। राष्ट्र की अनेकों समस्याओं का मूल कारण हमारे द्वारा आज भी अपनाई जा रही दूषित विदेशी शिक्षा व्यवस्था ही है। वस्तुत: ब्रिटिश शिक्षण प्रणाली ही आज भी हमारी शिक्षा व्यवस्था का मूल आधार है। भारतीय शिक्षण पद्धति में मातृभाषा की स्वतन्त्रता, स्वरोजगार के साधन, पारिवारिक कृषि, घरेलु व पारंपरिक उद्योग, व्यवसायिकता व लघु उद्यमिता में शिक्षा के प्रावधान समाप्त होते गये, इस कारण विद्यार्थी को आत्मनिर्भरता के अवसर मिलने बंद हो गये। आजादी के 68 वर्षों बाद भी भारतीय प्रतिभाओं को शिक्षा और परीक्षा के चक्रव्यूह में यंत्रवत बना दिया है। चाहे चिकित्सकीय, व्यवसायिक, प्रबन्धकीय या तकनीकी सभी क्षेत्रों में हो, भारत में ही विद्यार्थी का समुचित विकास होने के बाद उनकी क्षमता व प्रतिभा दूसरे देशों को उन्नत करने में प्रयुक्त हो रही है। अपने ही देश और समाज के हित में उनकी श्रमशक्ति व बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग संभव नही हो पा रहा है।

यही कारण है कि ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था के सतत् सांस्कृतिक व वैचारिक प्रभाव से त्रस्त, हम आज भी अपनी मानसिक स्वतन्त्रता के लिये संघर्षरत हैं। पाश्चात्य जगत से भिन्न हमारी भौगोलिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप, वैश्विक, दृष्टि से उत्कृष्ट कोई भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था निर्मित नहीं कर पाये हैं। रवीन्द्र नाथ टैगोर, मदन मोहन मालवीय, महात्मा गाँधी द्वारा स्थापित स्वदेश पद्धति आधारित विश्वविद्यालयों के आदर्श हमारे सामने हैं। स्पष्टत: उनमें आर्थिकता, श्रेष्ठ उद्देश्यों हेतु शिक्षा प्राप्ति के लक्ष्य में बाधा नहीं बन सकी। स्वतंत्रता नियन्त्रित रहे, उसका दुरूपयोग न हो, यह विचार शिक्षा में ही निहित है। शिक्षा, विद्यार्थी को स्वतन्त्रता के साथ संघर्ष का साहस भी प्रदान करती है।

विदेशी भाषा में भारतीय बालकों के मस्तिष्क में भरी गई शिक्षा, रोजगार तो दे सकती है किन्तु विद्यार्थी मे आत्म शक्ति व आत्म गौरव का विकास नही कर सकती है। यह शिक्षा देश में गरीबी, मुखमरी, आर्थिक अभाव, स्व उद्यमिता, एवं आत्मनिर्भरता के विकल्प नहीं ढूँढ सकती। विदेशी शिक्षा प्रणाली द्वारा भारतीय बालकों के विचारों में आत्म गौरव व राष्ट्रीयता का भाव कदापि नहीं पनप सकता है। इस प्रकार इस शिक्षा के प्रभाव में पश्चिम की उदारवादी व अतिवादी विचारधारा को ही अधिकांश लोग स्वतन्त्रता मानते हैं। पश्चिम की अनिंरकुशता व प्रतिबन्धों के अभाव को ही स्वतंत्रता समझा जाने लगा है, जबकि मूलत: भारतीय शिक्षण पद्धति द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता व्यक्ति को अपने प्रति और समाज के प्रति भी उत्तरदायी बनाती है। यह विद्यार्थी के अपने हित में श्रेष्ठतम स्वरुप प्रदान करने हेतु रचनात्मक वातावरण का निर्माण करती है। अत: आधारभूत भारतीय शिक्षण द्वारा ही विद्यार्थी को स्वतंत्रतापूर्वक अपनी योग्यताओं को विकसित करने की क्षमता प्राप्त होगी तथा उसके अन्तर में निहित स्वाभाविक ज्ञान को प्रकट करने के अवसर प्राप्त होंगे। यही शाश्वत ज्ञान होगा, जो विद्यार्थी अपने जीवन में आत्मसात कर सकेगा और राष्ट्र के निर्माण में योगदान दे सकेगा। आज शिक्षा में विदेशी भाषा, तकनीक तथा आर्थिक निर्भरता के बाद भी हमने सैन्य सुरक्षा, अन्तरिक्ष कार्यक्रम, परमाणु कार्यक्रम, चिकित्सकीय अनुसंधान व खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति में उत्कृष्टता प्राप्त की है। अत: यदि भारतीय शिक्षण पद्धति, जो आज भी भारतीय परिवेश के अनुकूल है, को ही घरेलु व ग्रामीण आवश्यकताओं और संसाधनों के साथ परिसीमित करते हुए स्वतंत्र मूलभूत शैक्षिक तंत्र व तकनीक द्वारा विकसित करें तो एक वर्ग विशेष का ही नही भारत के गाँव-गाँव और प्रत्येक व्यक्ति का विकास होगा। तभी प्रत्येक भारतीय सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र होगा, यही हमारी शिक्षा का भी उद्देश्य है। ❑

(व्याख्याता (रसायन शास्त्र), राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

स्वतंत्रता और अध्यात्म

❑ डॉ.विजय अग्रवाल

स्वतंत्रता, यह बहुत खूबसूरत, बहुत जोरदार, बहुत वजनी, बहुत प्यारा और अद्भुत शक्ति से भरा हुआ शब्द है। सामान्य तौर पर हम सब स्वतंत्रता का राजनीतिक अर्थ ही लगाते हैं। राजनीतिशास्त्र में इसे पढ़ते हैं और देश की आजादी के रूप में इसका उपयोग करते हैं। लेकिन मुझे यह शक्तिशाली शब्द हमारे जीवन के केन्द्र का सबसे क्रांतिकारी और सबसे डायनामिक शब्द लगता है; इतना सक्रिय और गतिशील शब्द कि इसमें धर्म और अध्यात्म की झलक मिलने लगती है। आपको यह बात थोड़ी ऊटपटांग-सी लग सकती है कि कहाँ स्वतंत्रता और कहाँ आध्यात्मिकता। लेकिन मुझे लगता है कि यदि अध्यात्म के केन्द्र में कोई तत्त्व हो सकता है, तो वह स्वतंत्रता ही है। स्वतंत्रता का अर्थ है स्व का तंत्र यानी कि मेरी अपनी प्रणाली, मेरा अपना तरीका। इसी को गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इस रूप में कहा है कि ''दूसरे के धर्म का पालन करने से बेहतर है स्वधर्म का पालन करते हुए नष्ट हो जाना।'' यह स्वधर्म ही तो स्व का तंत्र है। गीता में कृष्ण का धर्म हिन्दू, मुसलमान, ईसाई का धर्म नहीं है, बल्कि यह प्रकृति का धर्म है। यह वह धर्म

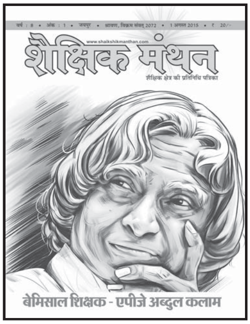

यदि अध्यात्म के केन्द्र में कोई तत्त्व हो सकता है, तो वह स्वतंत्रता ही है। स्वतंत्रता का अर्थ है स्व का तंत्र यानी कि मेरी अपनी प्रणाली, मेरा अपना तरीका। इसी को गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इस रूप में कहा है कि ''दूसरे के धर्म का पालन करने से बेहतर है स्वधर्म का पालन करते हुए नष्ट हो जाना।'' यह स्वधर्म ही तो स्व का तंत्र है। गीता में कृष्ण का धर्म हिन्दू, मुसलमान, ईसाई का धर्म नहीं है, बल्कि यह प्रकृति का धर्म है। यह वह धर्म है, जो प्रकृति ने अपनी हर एक रचना को दिया हुआ है और प्रकृति की जितनी भी रचनायें हैं, सभी एक-दूसरे से भिन्न हैं। यहाँ तक कि यदि आप एक ही पेड़ के दो आम एक ही समय में तोड़कर बारी-बारी से खायें, तो उनके भी स्वाद में आपको फर्क महसूस हो जाएगा, क्योंकि इन दोनों ही आमों का तंत्र अलग-अलग है, भले ही उनको रस पहुँचाने वाली जड़ें एक ही हैं और भले ही उन जड़ों को रस देने वाली ज़मीन भी एक ही है।

है, जो प्रकृति ने अपनी हर एक रचना को दिया हुआ है और प्रकृति की जितनी भी रचनायें हैं, सभी एक-दूसरे से भिन्न हैं। यहाँ तक कि यदि आप एक ही पेड़ के दो आम एक ही समय में तोड़कर बारी-बारी से खायें, तो उनके भी स्वाद में आपको फर्क महसूस हो जाएगा, क्योंकि इन दोनों ही आमों का तंत्र अलग-अलग है, भले ही उनको रस पहुँचाने वाली जड़ें एक ही हैं और भले ही उन जड़ों को रस देने वाली ज़मीन भी एक ही है।

यहीं पर बात आती है स्वतंत्रता और अध्यात्म की। मैं अपनी प्रणाली के अनुसार काम करूँ, यह हर कोई चाहता है। लेकिन विड़म्बना यह है कि दूसरा भी अपनी प्रणाली के अनुसार काम करे, यह कोई नहीं चाहता। हम दूसरों से उम्मीद करते हैं कि उसकी प्रणाली हमारे अनुसार हो। वह काम हमारे तरीके से करे और जैसे ही उससे हम यह अपेक्षा करने लगते हैं वैसे ही हमारी यह अपेक्षा धीरे-धीरे उसकी स्वतंत्रता का हरण करने लगती है। हम उस पर स्वयं को लादने लगते हैं। उसके तंत्र को कुचलना शुरू कर देते हैं, यानी कि हम उसके स्वधर्म को नष्ट कर देते हैं।

लेकिन मजेदार बात यह है कि ऐसा करके हम केवल उसके ही स्वधर्म को नष्ट नहीं करते बल्कि स्व के धर्म को भी नष्ट करते हैं। आपने यह जरूर महसूस किया होगा कि जब भी हम किसी दूसरे की स्वतंत्रता का हरण करते हैं, तो इस हरण करने की प्रक्रिया में कहीं-न-कहीं हम खुद की भी स्वतंत्रता का समर्पण करते हैं। छोटी-सी ही बात को ले लें और इस पर थोड़ी देर के लिए विचार करें ज्यादातर घरों में नौकरानी आती है। यह नौकरानी इसलिए रखते हैं ताकि हम अपने घर के कामकाज से मुक्त होकर उस समय का इस्तेमाल अपनी मनपसन्द के किसी और काम के लिए कर सकें। लेकिन क्या आपने कभी इस बात का लेखा-जोखा लिया है कि सचमुच में ऐसा हो पा रहा है या नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि उस नौकरानी को रोजाना निर्देश देने में, उसका इंतजार करने में और उसकी देखभाल करने की प्रक्रिया में हम स्वयं ही उसके नौकर बन गये हैं-एक निर्देश सेवक। हथकड़ी तो हथकड़ी ही होती है, फिर चाहे वह सोने की ही बनी हुई क्यों न हो। सेवक तो सेवक ही होता है फिर चाहे वह नौकरानी हो या निर्देश सेवक। इससे क्या फर्क पड़ता है। इसलिए अध्यात्म की शुरूआत ही स्वतंत्रता के इस बिन्दु से होती है कि दूसरों को स्वतंत्र करो, ताकि तुम खुद स्वतंत्र हो सको।

अध्यात्म का दूसरा चरण यह है कि तुम स्वयं स्वतंत्र हो, ताकि दूसरा कोई तुम्हें गुलाम न बना सके। इस 'स्वतंत्र हो वो' का सम्बन्ध मानसिक स्वतंत्रता से है। इसका सम्बन्ध विचारों की स्वतंत्रता से है। इसका सम्बन्ध इस बात से है कि छोटापन छोड़ो। छोटे कमरे में घुटन होती है। छोटे कपड़े पहनने से कसमसाहट बढ़ती है। जहाँ भी छोटापन होगा। वहाँ परेशानी होगी। जहाँ छोटे विचार होंगे, वहाँ घुटन होगी। जहाँ घुटन होगी, वहाँ स्व का तंत्र काम कर ही नहीं सकता तो ओछापन छोड़ो ताकि विचार स्वतंत्र हो सकें। लगने दो अपने विचारों में बड़ेपन के पंख, ताकि वह हमारे घर, हमारे नगर और यहाँ तक कि हमारे देश और दुनिया को छोड़कर ब्रह्माण्ड की खुलेआम सैर कर सके। छोटे कमरे में घुटन होती है। तोड़ो दिमाग की इस तिहाड़ जेल को, ताकि हमारी चेतना उन्मुक्त होकर ब्रह्माण्ड की चेतना से सम्पर्क करने लायक बन सके।

और इस स्वतंत्रता का तीसरा चरण है अध्यात्म की स्वतंत्रता। जब हम दूसरे चरण को पा लेते हैं, तब जाग्रत होती है आत्मा की शक्ति और आत्मा की शक्ति के जाग्रत होने का मतलब ही है-आत्मा का उन्मुक्त हो जाना, इतना उन्मुक्त हो जाना कि उसमें जगह तो थोड़ी-सी ही दिखाई देती है, लेकिन वह होती बहुत ज्यादा है। कम्प्युटर की एक छोटी-सी चिप में कितनी मेमोरी आ जाती है, आप जानते हैं। इसी तरह जब हमारी आत्मा उन्मुक्त हो जाती है तो उसमें पूरे ब्रह्माण्ड के लिए जगह बननी शुरू हो जाती है। और जब ऐसा होने लगता है और हो जाता है, उसी क्षण मोक्ष की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। उसी समय हम मुक्त हो जाते हैं और हमें मुक्ति मिल जाती है। क्या मुक्ति का अर्थ भी स्वतंत्रता नहीं है? ❑

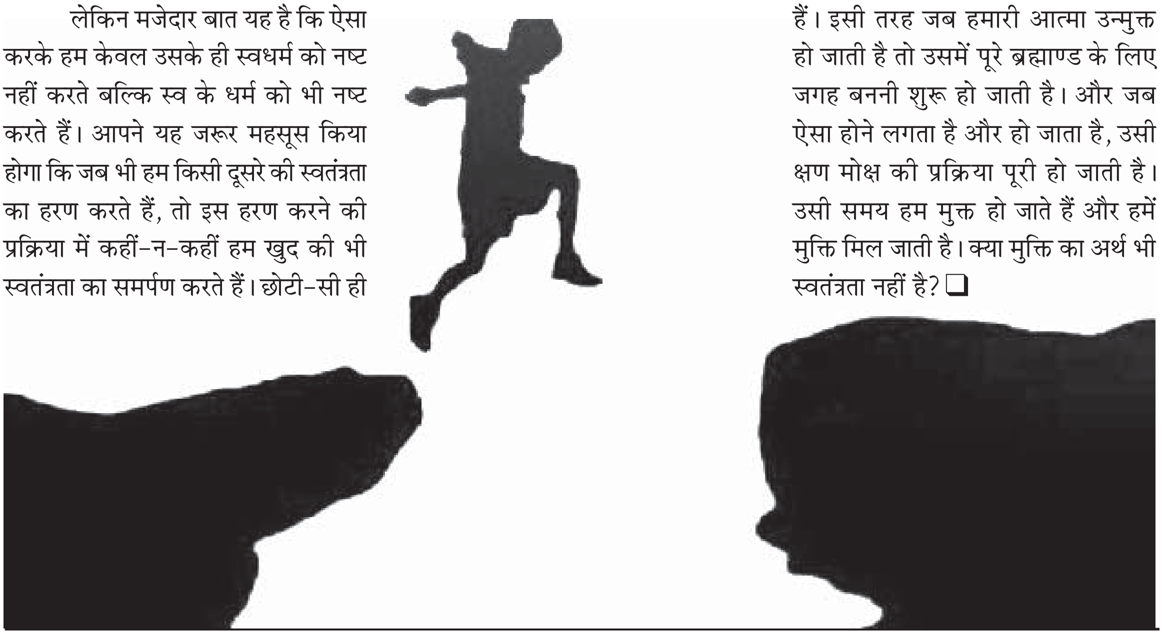

शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण होना चाहिए

❑ **अतुल कोठारी**

साक्षात्कार

स्वतंत्रता पश्चात् हमें शिक्षा क्षेत्र में किस दिशा में बढ़ना था और हम किस तरफ चल पड़े, हमारी वर्तमान शिक्षा नीति जीवन के मूल उद्देश्यों को पूरा कर पा रही है अथवा नहीं, मातृभाषा केवल भावनात्मक विषय नहीं है, बल्कि मातृभाषा में शिक्षा पर जोर देने के पीछे वैज्ञानिक कारण विद्यमान हैं, भाषा न केवल ज्ञानार्जन का माध्यम है, अपितु संस्कार व संस्कृति के प्रसार का माध्यम भी है, विदेशी भाषा में शिक्षा के प्रभाव सहित शिक्षा नीति को भारतीयता से जोड़ने के प्रयास पर मचने वाले शोर पर शिक्षाविद् एवं शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास के राष्ट्रीय सचिव अतुल कोठारी जी से विश्व संवाद केन्द्र ने बातचीत की, प्रस्तुत हैं बातचीत के अंश...

जीवन में शिक्षा का महत्त्व क्या है, वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिए?

शिक्षा के उद्देश्य की जब बात करते हैं तो स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि Man making & character building, यानि व्यक्तित्व विकास और चरित्र निर्माण-शिक्षा का मूल उद्देश्य है। व्यक्ति का विकास एक ठीक दिशा में होता है तो उसी प्रकार उसका चरित्र बनता है। आज हमारी व्यक्ति के विकास की कल्पना ही दूसरी हो गई है। वास्तव में व्यक्ति के समग्र विकास की बात है, जिस पर हम काम कर रहे हैं। उपनिषद में दिए गए पंचकोश हैं, इन पंचकोश के आधार पर व्यक्तित्व का विकास होता है, तब व्यक्तित्व का समग्र विकास होता है। हमारा मानना है कि यह व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया है और उसका परिणाम चरित्र निर्माण है। पञ्चकोश के आधार पर बालक का विकास होगा तो वह बालक निःस्वार्थी, सेवाभावी, उसका मूल आधार आध्यात्मिक, शरीर से सबल, बुद्धिमान, स्वस्थ मन का होगा। इस प्रकार का बालक होना, वही तो चरित्र है। लेकिन आज के संदर्भ में उद्देश्य की दृष्टि से और दो बातें जोड़ता हूँ...। शिक्षा से सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए और राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान शिक्षा से प्राप्त होना चाहिए।

क्या वर्तमान शिक्षा प्रणाली उद्देश्य को पूरा कर रही है, अपने देश में वर्तमान शिक्षा प्रणाली को लेकर आपका क्या मानना है ?

वर्तमान शिक्षा प्रणाली को उपयुक्त तो क्या कहें, पर बिल्कुल विपरीत है। अधिक पढ़ा लिखा व्यक्ति कई बार अधिक भ्रष्ट दिखता है, हमारी शिक्षा, व्यक्ति को विपरीत दिशा में ले जा रही है। इसीलिए आज की शिक्षा प्रणाली तो किसी भी हालत में नहीं चलनी चाहिए। हमारा उद्देश्य भी यही है, देश की शिक्षा प्रणाली बदलनी चाहिए। देश की शिक्षा को एक नए विकल्प की आवश्यकता है, और उसके लिए शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास के माध्यम से हम प्रयास कर रहे हैं।

जब शिक्षा नीति में बदलाव की बात आयेगी, उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राथमिक विषय है भाषा का, जब तक देश की भाषा नीति नहीं बदलेगी, तब तक शिक्षा नीति बदलने का अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होगा। इस हेतु मैं वर्तमान सरकार को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने शिक्षा नीति के साथ-साथ भाषा नीति को लेकर भी कार्य शुरू किया है।

यदि उद्देश्य पूरा नहीं हो रहा तो हमारी शिक्षा प्रणाली कैसी होनी चाहिए, वर्तमान प्रणाली में क्या परिवर्तन होने चाहिए ?

जीवन की नींव ही शिक्षा है, इसीलिए हमने एक नारा दिया है कि यदि देश को बदलना है तो पहले शिक्षा को बदलना होगा। जब तक देश में शिक्षा नहीं बदलेगी, तब तक देश में वास्तविक परिवर्तन नहीं हो सकता। पिछले 150-175 साल में जिस शिक्षा को पढ़कर हम आगे बढ़ रहे हैं, उसमें उनका जो मानस बन गया है उसमें यदि अर्थशास्त्री है तो उसे मार्क्स के सिद्धांत ज्यादा अच्छे लगते हैं और चाणक्य की बात करो तो भगवाकरण की बात लगती है। किसी भी व्यक्ति ने 15-20 साल जो पढ़ाई की, तो उसी के आधार पर उसका जीवन बनेगा। शिक्षा ऐसी चीज है, कि छोटी उम्र

जीवन की नींव ही शिक्षा है, इसीलिए हमने एक नारा दिया है कि यदि देश को बदलना है तो पहले शिक्षा को बदलना होगा। जब तक देश में शिक्षा नहीं बदलेगी, तब तक देश में वास्तविक परिवर्तन नहीं हो सकता। पिछले 150-175 साल में जिस शिक्षा को पढ़कर हम आगे बढ़ रहे हैं, उसमें उनका जो मानस बन गया है उसमें यदि अर्थशास्त्री है तो उसे मार्क्स के सिद्धांत ज्यादा अच्छे लगते हैं, और चाणक्य की बात करो तो भगवाकरण की बात लगती है। किसी भी व्यक्ति ने 15-20 साल जो पढ़ाई की, तो उसी के आधार पर उसका जीवन बनेगा। शिक्षा ऐसी चीज है, कि छोटी उम्र से बच्चे के मन पर इसका गहरा प्रभाव होता है, बचपन का अधिक प्रभाव होता है, उसको बदलना बहुत मुश्किल होता है।

से बच्चे के मन पर इसका गहरा प्रभाव होता है, बचपन का अधिक प्रभाव होता है, उसको बदलना बहुत मुश्किल होता है।

एक उदाहरण मैं कई बार देता हूँ... कि जो राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद के आधार पर काम करने वाले व्यक्ति हैं, ऐसे लोग भी समझते हुए भी व्यवहार में अनेक बार मत संप्रदाय को भी धर्म ही बोलते हैं, जबकि वे जानते हैं कि धर्म, मत, संप्रदाय अलग-अलग हैं। शिक्षा का मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव होता है, कि बुद्धि नहीं मानती है फिर भी मुँह से वही निकल जाता है। इसलिए जब तक शिक्षा जैसी आधारभूत बातें ठीक नहीं होती, तब तक देश की समस्यायें जो आज दिख रही हैं, उनका समाधान भी बहुत मुश्किल है।

मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है, ऐसा क्यों ?

मातृभाषा में केवल प्राथमिक शिक्षा नहीं, मैं तो कहता हूँ समग्र शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए, यह बात गाँधी जी ने भी कही है। क्योंकि प्राथमिक शिक्षा तो अपनी भाषा में पढ़ो, फिर आगे अंग्रेजी माध्यम में पढ़ो तो माता-पिता क्यों मातृभाषा में बच्चों को प्राथमिक शिक्षा में पढ़ायेंगे। हम नहीं कहते कि अंग्रेजी को एकदम निकाल दो, आप दोनों विकल्प रखिए उच्च शिक्षा में भी, यानि आईआईटी में भी हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं व अंग्रेजी माध्यम चुनने का विकल्प हो, साइंस में भी हिन्दी या अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने का विकल्प हो। शुरूआत इसी प्रकार से करनी पड़ेगी, फिर धीरे-धीरे बदलाव आएगा।

मूल बात यह है कि यह केवल भावनात्मक विषय नहीं है, कि अपनी भाषा (मातृभाषा) में शिक्षा दें यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। दुनिया के किसी भी भाषा के विद्वान, भाषाशास्त्री, वैज्ञानिक सभी का एक ही मत है कि शिक्षा अपनी भाषा में ही होनी चाहिए और प्राथमिक शिक्षा तो अनिवार्य रूप से मातृभाषा में ही होनी चाहिए।

यह वैज्ञानिक बात इसलिए है कि

केन्द्र सरकार का राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान केंद्र है। संस्थान की प्रो. नलिनी सिंह ने मस्तिष्क पर अनुसंधान किया है, उनकी रिपोर्ट प्रकाशित भी हुई हैं। उन्होंने दो पक्षों पर अनुसंधान किया है...हिन्दी में बोलने, लिखने-पढ़ने वाले बच्चे तथा अंग्रेजी में बोलने, लिखने-पढ़ने वाले बच्चों पर। उनके अनुसंधान का निष्कर्ष यह है कि अंग्रेजी में बोलने, लिखने-पढ़ने से केवल बाँया मस्तिष्क सक्रिय होता है, जबकि हिन्दी में बोलने, लिखने-पढ़ने से दोनों मस्तिष्क (दोनों हिस्से) समान रूप से सक्रिय होते हैं। तो आप समझ सकते हैं कि किस में बच्चे का सही विकास होगा, हमारा किसी भाषा से विरोध नहीं है, केवल वैज्ञानिक आधार पर विचार करने की बात है।

मातृभाषा में शिक्षा का क्या महत्त्व है, क्या मातृभाषा का संस्कारों व संस्कृति से भी संबंध है ?

भाषा मात्र बातचीत का एक माध्यम नहीं है। भाषा के साथ संस्कार व संस्कृति भी आती-जाती है, आखिर संस्कृति को आगे ले जाने का काम कौन करता है, भाषा ही तो करती है। पिछले करीब 175 साल में विशेषकर स्वतंत्रता के पश्चात् हमारी भाषा कनिष्ठ हो गई और अंग्रेजी भाषा श्रेष्ठ हो गई। अंग्रेजी श्रेष्ठ है, इसलिए देश में आज भी यह तर्क दिया जाता है कि मेडिकल, इंजीनियरिंग, प्रबंधन आदि में अपनी भाषा में पाठ्यक्रम कहाँ है, आज हमारी भाषा में सोचते हैं वह भी कहते हैं कि अनुवाद करो- लेकिन, कोई यह नहीं सोचता कि हमारी एवं छात्रों की आवश्यकता के अनुसार हम नया पाठ्यक्रम हमारी भाषा में तैयार करेंगे। लगता है कि यह सोच ही समाप्त हो गई है, क्योंकि अंग्रेजी ही हमारी माई बाप सब कुछ हो गई, इस कारण जो अंग्रेजी में है, वो ही श्रेष्ठ है। इसलिए ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, इंग्लैंड से जो अंग्रेजी में पुस्तकें हैं, वो लाओ और वही पढ़ो जिसके कारण मानस बना है कि वहाँ की संस्कृति, परंपरायें, उत्सव श्रेष्ठ हैं, वे जो कर रहे हैं श्रेष्ठ है, और हम कनिष्ठ हैं। यही कारण है कि आज भी देश में सफेद चमड़ी का आकर्षण कम नहीं हुआ है। यह भाषा का ही प्रभाव है, भाषा के साथ संस्कृति आती है, संस्कार आते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति पर अलग-अलग प्रभाव कम ज्यादा हो सकता है, पर होता अवश्य है। हमारे यहाँ परंपरा है। बच्चे अपने शिक्षक के पैर छूते हैं, आज शायद यह थोड़ी कम हुई है यह भी सच है। लेकिन अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में यह बिल्कुल भी नहीं दिखेगी।

जर्मनी, फ्रांस, जापान, रूस, चीन सहित विश्व के अन्य देशों में मातृभाषा में शिक्षा प्रदान की जाती है, ये प्रगति में भी हमसे कहीं आगे हैं। पर, हम आगे बढ़ने के लिए अंग्रेजी की अनिवार्यता का तर्क देते हैं, हमें मातृभाषा को बढ़ावा देने के लिए क्या करना होगा?

एक तर्क दिया जाता है कि दुनिया ग्लोबल (वैश्विक) हो गई। और इस दौर में हमें आगे बढ़ने के लिए अंग्रेजी की अनिवार्यता को स्वीकार करना होगा। लेकिन,

वास्तव में हमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देश को आगे बढ़ाने के लिए योजना बनानी है तो एक रणनीति के तहत आठ से दस भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है, इसे लेकर बच्चों, युवाओं, विद्वानों को तैयार करना पड़ेगा। इसमें रशियन, अरबी, स्पेनिश, फ्रेंच, अंग्रेजी, जापानी सहित अन्य को शामिल कर सकते हैं, लेकिन इसके कारण करोड़ों बच्चों पर अनिवार्य रूप से अंग्रेजी भाषा थोपने की आवश्यकता नहीं है। बच्चे अपनी भाषा में पढ़ें, सारा ज्ञान अपनी भाषा में हासिल करें, एक स्तर पर आने के बाद उनकी क्षमता, आवश्यकता, योग्यता के अनुसार जितनी भाषाएँ सीखनी हैं, सीखें, कोई आपत्ति नहीं है। दुनिया में सारा ज्ञान एक भाषा में है ऐसा नहीं है, अंग्रेजी में ज्यादा ज्ञान है, ऐसा हम इसलिए कहते हैं क्योंकि हमारे यहाँ कुछ लोग अंग्रेजी जानते हैं, अन्य विदेशी भाषा जानते नहीं हैं। जर्मन भाषा में दर्शन का ज्ञान अच्छा है, विज्ञान का ज्ञान रशियन भाषा में, साहित्य का ज्ञान फ्रांसीसी भाषा में ज्यादा अच्छा है, दुनिया का ज्ञान हम तक आये इसके लिए सारी भाषाओं के विद्वान तैयार करने चाहिए। इसके लिए अनुवाद की भी ठोस व्यवस्था देश में होनी चाहिए।

जब तक तीन स्तर पर अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त नहीं होगी, तब तक अपनी भाषाओं को पूर्ण स्थापित करना मुश्किल है। पहली बात है कि हमारी उच्च शिक्षा, विशेषकर व्यावसायिक शिक्षा (आईआईटी, आईआईएम, मेडिकल, मैनेजमेंट आदि) अंग्रेजी माध्यम में ही है, अपनी भाषा में संभव नहीं, न ही व्यवस्था है। दूसरी बात प्रतियोगी परीक्षाएँ अधिकतर केवल अंग्रेजी में हैं, और तीसरी बात कि हमारे शासन, प्रशासन का अधिकतर काम न्यायालय सहित अंग्रेजी में ही है तो इन तीन स्तर पर अंग्रेजी भाषा की अनिवार्यता समाप्त करनी होगी, यह किए बिना अपनी भाषाओं को पुनर्स्थापित करना मुश्किल है। इसलिए आज समाज में अंग्रेजी माध्यम का आकर्षण बढ़ा है। इसमें अभिभावकों का भी दोष नहीं है, वह भी सोचते हैं कि उच्च शिक्षा में अंग्रेजी माध्यम ही होने वाला है, तो क्यों न पहले से ही अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाएँ। अन्यथा बच्चों को आगे कठिनाई आती है, बच्चों के भविष्य का सवाल होता है, प्रतियोगी परीक्षा के कारण नौकरी का प्रश्न होता है, वहाँ भी अंग्रेजी में परीक्षाएँ ही रहती है। शासन प्रशासन में भी काम अंग्रेजी में है, इसलिए मजबूरी में लोग घसीटे जा रहे हैं, इस हेतु तीनों स्तर पर परिवर्तन करना होगा, अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त होनी चाहिए।

क्या हम केवल अंग्रेजी भाषा में पढ़कर ही आगे बढ़ सकते हैं, यदि नहीं तो फिर अंग्रेजी को इतना महत्त्व देने की क्या आवश्यकता है?

हम अंग्रेजी के बिना आगे नहीं बढ़ पाएंगे, यह तर्क नहीं कुतर्क है। हमारे देश में स्वतंत्रता के बाद कितने भारतीयों को नोबेल पुरस्कार मिले, 125 करोड़ लोगों का देश है। इजरायल एक छोटा सा देश है, दिल्ली से भी छोटा, हमारे बाद स्वतंत्र हुआ है, लेकिन इजरायल में 16 लोगों को नोबेल पुरस्कार मिले हैं। और इन समस्त 16 लोगों ने अपनी हिब्रू भाषा में ही काम किया है।

किसी दूसरी भाषा में, विदेशी भाषा में कुछ जानकारियाँ तो प्राप्त की जा सकती हैं, सीमित मात्रा में ज्ञान तो प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन ज्ञान का सृजन नहीं किया जा सकता, सृजनात्मकता इसमें नहीं हो सकती। इसलिए अंग्रेजी में ही आगे बढ़ा जा सकता है, इसका कोई आधार नहीं है।

25 साल माइक्रोसाफ्ट में कार्य करने वाले, केजी से पीजी, आईआईटी तक अंग्रेजी में पढ़ाई करने वाले संक्रान्त सानू ने पुस्तक लिखी है, अंग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल, उन्होंने पुस्तक में तथ्यों सहित समस्त तर्क दिए हैं। उन्होंने लिखा है कि दुनिया में जीडीपी में टॉप 20 देश (50 लाख से अधिक आबादी वाले) अपनी भाषा में शिक्षा दे रहे हैं, और अपनी भाषा में सब काम कर रहे हैं। केवल साढ़े तीन देश अमेरिका, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया और आधा कनाडा (लगभग आधे हिस्से में स्पेनिश प्रभावी है) अंग्रेजी में शिक्षा देते हैं, कार्य करते हैं। क्योंकि इनकी मातृभाषा अंग्रेजी ही है।

दूसरी ओर उन्होंने बताया है कि दुनिया में जीडीपी की दृष्टि से 20 सबसे पिछड़े देशों में लगभग सभी देश ऐसे हैं जो मातृभाषा को छोड़कर अन्य भाषाओं या अपनी और विदेशी भाषा में शिक्षा दे रहे हैं। स्पष्ट है कि जब तक भारत में अपनी भाषा को महत्त्व नहीं देंगे, तब तक देश का पूर्ण विकास नहीं होगा।

हमने मातृभाषा व भारतीय भाषाओं की बात की है। बच्चों को अपनी भाषा में शिक्षा मिलनी चाहिए, अपनी भाषा में देश का सारा कार्य होना चाहिए। हिन्दी देश की राजभाषा है, तो हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में स्थापित करना चाहिए, उसे राष्ट्रीय स्तर पर स्थान मिलना चाहिए। राज्यों में वहाँ की राज्य भाषाओं को स्थान मिले।

मातृभाषा में शिक्षा लेने वाले विद्यार्थियों की सबसे बड़ी समस्या है, उच्च शिक्षा में पढ़ाई जाने वाली अच्छे स्तर की पाठ्य सामग्री का उपलब्ध न होना, (quality reading material/books), इसे लेकर क्या प्रयास हो रहे हैं ?

उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम तैयार करने को लेकर हिन्दी विश्वविद्यालय भोपाल में हाल ही में प्रयास शुरू हुए हैं। पहले चरण में उन्होंने मेडिकल, इंजीनियरिंग, और प्रबंधन के पाठ्यक्रम पर कार्य शुरू किया है। आज देश में इन क्षेत्रों की ओर अधिक आकर्षण व माँग है। पहले हिन्दी में पाठ्यक्रम तैयार कर रहे हैं, संभवतया आने वाले एक दो साल में यह शुरू भी हो जाए। उसके बाद अन्य भाषाओं में पाठ्यक्रम तैयार करने के प्रयास हो सकते हैं। ❑

(राष्ट्रीय सचिव, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास)

शिक्षा : उपेक्षित होते विश्वविद्यालय

❑ अवधेश कुमार सिंह

भारत में विश्वविद्यालयों की हालत किसी भी पैमाने से ठीक नहीं लगती। विश्वविद्यालय ज्ञान-सृजन के लिए होते हैं, पर यह संभव तभी है जब वे प्रश्नों के क्रीड़ा-स्थल हों। जाक देरिदा ने विश्वविद्यालय को किसी शर्त के बगैर प्रश्न करने का स्थल कहा है। प्रश्न करने की यह योग्यता विश्वविद्यालय को सत्तावान बनाती है और सत्ताहीन भी, क्योंकि उनसे उठे प्रश्न सत्ता के केंद्रों के अहं को ठेस पहुँचाते हैं और इस वजह से सत्ता के केंद्र कभी सच्चे विश्वविद्यालय के साथ नहीं होते, क्योंकि वे सत्ताधीशों को तंग करते हैं। विश्वविद्यालयों की आत्मनिर्भरता, उनकी नैतिक सत्ता और सत्ताधीशों की उदारता, परिपक्वता और अकादमिक स्वायत्तता के प्रति सम्मान और सहिष्णुता इस स्थिति में बदलाव ले आएँ तो और बात है।

पश्चिम में विश्वविद्यालय की स्थिति हमसे अच्छी है, पर वहाँ भी इसका पतन और अधिक बढ़े उससे पूर्व उनके अकादमिकों ने इसकी चर्चा शुरू कर दी है। टेरी इगल्टन ने पिछले दिनों 'द स्लो डेथ ऑफ दि यूनिवर्सिटी' लेख लिखा, जिसकी खास बात यह थी कि इसमें उन्होंने 'डेथ' या 'मौत' शब्द का प्रयोग व्यंजना में कम, अभिधा में ज्यादा किया। एक बात और, 'मृत्यु' का अर्थ 'केंद्रीयता का अभाव' होता था और अक्सर ऐसे शीर्षक के बाद प्रश्नवाचक चिह्न लगाया जाता था, पर इस बार ऐसा नहीं है। यानी मौत का समाचार 'पक्का' है। इसकी एफआइआर किसी और ने नहीं, बल्कि प्रोफेसर इगल्टन ने कराते हुए इसे वैश्विक परिघटना माना।

उनके अनुसार 'विश्वविद्यालय' की मौत के लिए जिम्मेदार कारकों में उच्चशिक्षा का कॉरपोरेटीकरण या वाणिज्यीकरण है। आज के प्रोफेसर मैनेजर रह गए हैं और कुलपति मानो कर्ताधर्ता, जिसका मुख्य काम आर्थिक संसाधन जुटाना है, न कि स्तरीय शिक्षा, शोध, ज्ञान का सृजन, संरक्षण, विस्तार या मूल्यों का संवर्धन। शुल्क-अर्जन शिक्षा से ज्यादा जरूरी है। मानविकी की स्थिति तो और खराब है। आने वाले दिनों में अगर इसके विभाग जिंदा रहते हैं, तो उनमें व्यवसाय के विद्यार्थियों को 'सेमी-कोलन का प्रयोग' जैसे विषय पढ़ाए जाएंगे। संदेश साफ है: आज के विश्वविद्यालय 'सर्कस' भर रह गए हैं और धीमी मौत मर रहे हैं।

पश्चिम में विश्वविद्यालय की यह स्थिति हमें अपनी ओर देखने को बाध्य करती है। गिने-

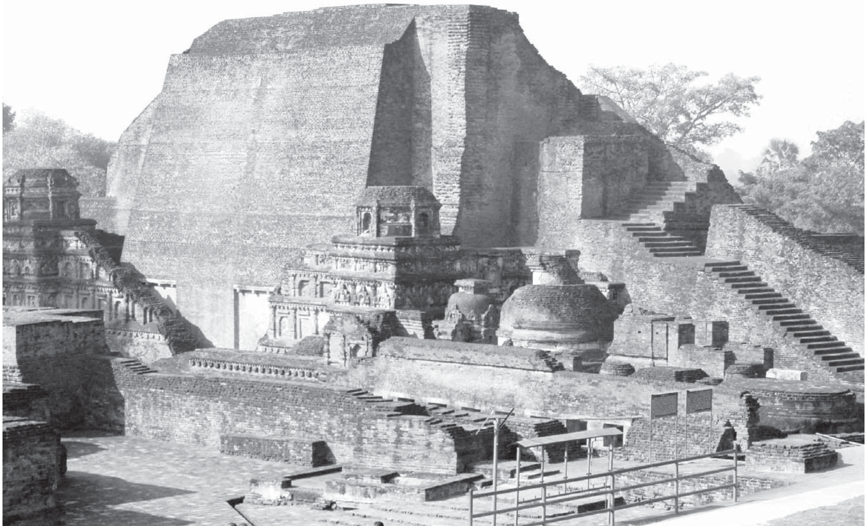

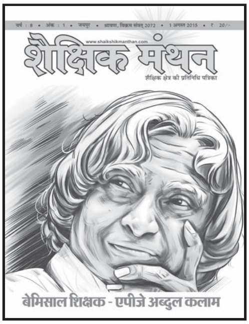

हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम न तो पश्चिमी ढंग के विश्वविद्यालय के मॉडल को कायदे से लागू कर सके और न ही भारतीय ढंग के। जब नालंदा अपने बौद्धिक वैभव के शिखर पर था तब 'यूनिवर्सिटी' शब्द पश्चिम के शब्दकोश में ही नहीं था। जब नालंदा को जलाया गया, उस समय तक बोलोग्ना, पेरिस, कैंब्रिज और ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय अपने शैशव-काल में थे। येल और हार्वड विश्वविद्यालय तब आधी सदी पीछे थे। ज्वलंत इतिहास के सामने शैक्षणिक ह्रास का वर्तमान यथार्थ भयंकर टीस पैदा करता है। इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि नालंदा विश्वविद्यालय जिनकी समृद्ध विरासत हो, उन्हें उच्च शिक्षा के लिए विदेशी मॉडल तलाश करना पड़ रहा है।

चुने अपवादों को छोड़, हमारे विश्वविद्यालयों की मृत्यु का सवाल ही कहाँ उठता है, वे जिंदा ही कहाँ थे? यहाँ विश्वविद्यालय जैसी संस्था की बात करने का कोई अर्थ नहीं। हाँ, कुछ अकादमिक लोग कभी-कभार रो लेते हैं, पर उन्हें यह भी पता नहीं कि विश्वविद्यालय नाम की संस्था होती क्या है?

जिस पैमाने से इगल्टन 'विश्वविद्यालय की मौत' की बात करते हैं, उसका फूहड़ रूप हमारे यहाँ दिखाई देता है। कॉरपोरेटाइजेशन का उद्देश्य लाभ कमाना तो है, पर उसमें कहीं न कहीं स्तरीय सेवा और पेशेवरी का आग्रह होता है। कॉरपोरेटाइजेशन और प्राइवेटाइजेशन आज का सच है, तो भी शिक्षा का व्यवसायीकरण अस्वीकार्य है। व्यवसायीकरण तो मान भी लें, लेकिन व्यापारीकरण ने भारतीय शिक्षा और विश्वविद्यालय का कबाड़ा कर दिया है।

हकीकत यह है कि भारतीय शिक्षा काले धन को सफेद करने का अड्डा बन गई है। मिलीभगत की संस्कृति में काला धन तो धड़ल्ले से सफेद हो रहा है, पर विश्वविद्यालय कालिख का कारखाना बनते जा रहे हैं। यह काला धन पूंजीपतियों से ज्यादा राजनेताओं का है, जिनका न तो समाज या शिक्षा से लगाव है, न उनका कोई जीवन-दर्शन है। उनके लिए शिक्षा काले धन के वैधीकरण और फिर उसमें वृद्धि का साधन है, जिसके लिए अपनी सत्ता, सलूक और दबंगई का सदुपयोग करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। जो राज्य या केंद्रीय विश्वविद्यालय इस बीमारी से बचे हैं, उनमें इन नवप्रवर्तन की बात तो दूर, संबंधित विश्वविद्यालय के 'एक्ट' और 'मैंडेट' के नाम पर नए विचारों की हत्या आम बात है।

हमारा दुर्भाग्य यह है कि हम न तो पश्चिमी ढंग के विश्वविद्यालय के मॉडल को कायदे से लागू कर सके और न ही भारतीय ढंग के। जब नालंदा अपने बौद्धिक वैभव के शिखर पर था तब 'यूनिवर्सिटी' शब्द पश्चिम के शब्दकोश में ही नहीं था। जब नालंदा को जलाया गया, उस समय तक बोलोग्ना, पेरिस, कैंब्रिज और ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय अपने शैशव-काल में थे। येल और हार्वड विश्वविद्यालय तब आधी सदी पीछे थे। ज्वलंत इतिहास के सामने शैक्षणिक ह्रास का वर्तमान यथार्थ भयंकर टीस पैदा करता है। इससे बड़ी विडंबना क्या हो सकती है कि नालंदा विश्वविद्यालय जिनकी समृद्ध विरासत हो, उन्हें उच्च शिक्षा के लिए विदेशी मॉडल तलाश करना पड़ रहा है।

और तो और, हमसे तो इसकी पुनर्स्थापना भी नहीं हो पा रही है। ऐसे में आज की उच्चशिक्षा के लिए खासकर अन्य विश्वविद्यालय के विकास के मॉडल हम कहाँ से निकालेंगे? विश्वप्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन इसके प्रथम कुलाधिपति बने। इस देश का बड़े से बड़ा कार्यालय या विभाग उनकी बात टाल नहीं सकता था। पर उनके कुलाधिपत्य के दौरान नालंदा विश्वविद्यालय की पुनर्स्थापना और विकास आशा के अनुरूप नहीं रहा। जरूरत है उसकी स्थापना और उत्थान के मूल तत्त्वों को क्रियान्वित करने की।

नालंदा विचार है, इमारत नहीं। इसके मूल सात तत्त्व थे: संपूर्ण आवासीय। इस विश्वविद्यालय में योग्य विद्यार्थियों को प्रवेश मिलता था और नागार्जुन, आर्यभट्ट, आर्यदेव, शैलभद्र, पद्मसंभव और धर्मकीर्ति जैसे चिंतक विद्वान आचार्यों का मार्गदर्शन। दो हजार अध्यापक और लगभग दस हजार विद्यार्थियों का अनुपात 1:5 के आसपास रहता था। इसके परिसर में लगभग दो हजार अध्यापकों के लिए आवास व्यवस्था थी; इसका 'धर्मगंज' नामक नौ मंजिला ग्रंथालय था, जिसके 'रत्नोदधि', 'रत्न-सागर' और 'रत्नंजक' नामक तीन भाग थे, जिसकी पांडुलिपियों और किताबों को पढ़ने के लिए विदेशी विद्वान आते थे।

बिना किसी राजकीय दबाव या भेदभाव के शांतरक्षित और नागार्जुन जैसे दार्शनिक विद्वान कुलपति बनते थे। आर्थिक स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए उदार शासकों ने चार सौ के आसपास गाँव दान में दिए थे। विदेशी राजवंशों से दान (एंडोमेंट फंड) मिलते थे। पर नालंदा को यूजीसी या मंत्रालय को उपयोग-प्रमाणपत्र देने की जरूरत नहीं थी। प्रबंधन स्वायत्त और बाह्य हस्तक्षेप मुक्त था और सत्ताधीशों में अपने लोगों को बिठाने का लालच या जिद नहीं थी। बौद्धदर्शन केंद्रित विश्वविद्यालय होने के बावजूद यहाँ का पाठ्यक्रम समावेशी था, जिसमें वेदान्त, न्याय, व्यावसायिक और जीवन-कौशल शिक्षा शामिल थे; और नालंदा के केंद्र में परीक्षा न होकर ज्ञानार्जन था, जिसका मूल्यांकन विद्वत-गोष्ठी में सतत् भाग लेने से होता था। नालंदा के ये नियामक सिद्धांतों पर अमल करके भारतीय विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालय जैसी संस्था को 'मौत' से बचा सकते हैं।

आज विश्वविद्यालय की मृत्यु के लिए वे सब तत्त्व जिम्मेदार हैं, जो शिकायत करते हैं। पर सबसे बड़ी जिम्मेदारी शिक्षकों की है, क्योंकि इसी समुदाय के हित, प्रतिष्ठा और भविष्य दाव पर लगे हैं। विश्वविद्यालय राजनेताओं की चिंताओं की परिधि में तभी आते हैं, जब या तो नियुक्तियों का मौसम होता है या फिर छात्रसंघ चुनाव का, क्योंकि तब उन्हें अपनी जमात में भर्ती के नए रंगरूट मिलते हैं। पर अध्यापक की जिंदगी के चार दशक खपते हैं और समाज उसे चालीस पीढ़ियाँ सौंपता है। इसलिए एक अध्यापक के पास उत्तरदायित्व से बचने का कोई रास्ता नहीं। विडंबना है कि कुलपति बन कर विश्वविद्यालय का यह आचार्य वही सब कुछ करता दिखाई देता है, जिनकी वह आलोचना किया करता था।

विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों को छोड़ भी दें, तो समझ नहीं आता कि समाज को जिन कला और वाणिज्य संकाय के शिक्षण से ज्यादा शिकायत है, उनमें मेरे अध्यापक-मित्रों को उच्च शिक्षण, शोध और नैतिक व्यवहार की जिम्मेदारी निभाने से कौन रोकता है? ❑

स्वातन्त्रयोत्तर भारत की उच्च शिक्षाः एक सिंहावलोकन

❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

किसी भी देश के समग्र विकास में उसकी सांस्कृतिक विरासत, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ शिक्षा की महती भूमिका होती हैं। यदि कोई देश उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर सम्पूर्ण स्वाधीनता के साथ प्रगति करना चाहे, तो उसमें प्रत्येक व्यक्ति, समाज व संस्थाओं का योगदान होता है। तभी देश स्वतंत्र व प्रजातांत्रिक देश के रूप में विकसित होता है। यह भी स्पष्ट हैं, कि देश को अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक व धार्मिक स्वतंत्रता को अक्षुण बनाए रखना होगा, साथ सभी क्षेत्रों यथा शिक्षा, चिकित्सा, उद्योग, कृषि, वाणिज्य, विज्ञान के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में भी सम्पूर्ण विकास करना होगा। स्वाधीनता के बाद हमने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार विकास किया, उसका प्रयास इस आलेख में किया गया हैं। किसी भी देश का शिक्षातंत्र उसके संविधान की तरह ही उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्त्व करता हैं। इसी कारण हमारा मुख्य उद्देश्य साम्राज्यवादी-सामंतवादी शिक्षा प्रणाली के अवशेषों को मिटाकर, भारतीय संस्कृति के अनुरूप व आधुनिकीकरण की ओर बढ़ते समुदाय की नई आवश्यकताओं, आकाँक्षाओं और माँगों के अनुसार नई प्रणाली का विकास करना हैं। प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का पहला प्रमाण छांदाग्योपनिषद् में श्वेतकेतु नामक विद्यार्थी के ब्राह्मण-परिषद् में वेदों एवं धर्मसूत्रों के ज्ञान के प्रसंग से मिला है। ब्राह्मण-परिषद् तत्कालीन विश्वविद्यालय था। इसके अतिरिक्त दूसरी शताब्दी एवं पाँचवी शताब्दी आदि में भी कई ख्याति प्राप्त विश्वविद्यालयों का वर्णन आता है- जैसे ललितगिरी, पुष्पगिरी, नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला आदि।

स्वाधीनता के बाद देश में संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के द्वारा शिक्षा के संबंध में प्रावधान रखे गए। जिनका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय विकास, भ्रातृत्व, एकात्मकता, सामाजिक न्याय, सामाजिक परिवर्तन व समावेशी उन्नति आदि विषय रहें, कई विकासात्मक प्राथमिकताओं के साथ-साथ शिक्षा के बुनियादी तत्व भी रहे। अनुच्छेद 350 में: मातृभाषा में शिक्षण, अनुच्छेद 351: राष्ट्रभाषा का विकास, अनुच्छेद 46: राज्य समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों की रक्षा कर विकास करना है। केन्द्रीय सूची की बिन्दु संख्या 10 एवं 12 में अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में भागीदारी व वैश्विक सहयोग, बिंदु संख्या 64 व 65 में शैक्षणिक शोध, तकनीकी शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार, बिन्दु संख्या 66 में उच्चशिक्षा का नियंत्रित समन्वित विकास व शैक्षणिक संस्थाओं के मानकों के निर्धारण का उल्लेख है। समवर्ती सूची की बिन्दु संख्या 20 में आर्थिक व सामाजिक योजना निर्माण केन्द्र का दायित्व है, यह उल्लिखित किया गया है। शिक्षा का केन्द्रीय व राज्य सूची में होने के कारण, एक संयुक्त उपक्रम (Joint Venture) न बनकर एक साझीदारी के रूप में विकसित हुआ हैं, जहाँ शिक्षा से सम्बंधित वित्त पोषण का अधिकतम भाग केन्द्र द्वारा होता हैं। अतः केन्द्र हमेशा अग्रज की भूमिका में रहता है। उच्च शिक्षा के उन्नयन के उद्देश्य को लेकर कई आयोगों का गठन हुआ जैसे- उच्च शिक्षा के योजनागत विकास हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, 1953, राधाकृष्णन आयोग 1948-49, शिक्षा आयोग 1964-66, उच्चशिक्षा के विकास का नीतिगत संचालन हेतु-राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (1992 में संषोधन सहित) तथा तत्सम्मत कार्ययोजना, 1992 आदि। सभी ने शैक्षणिक उन्नयन के लिए कई महत्त्वपूर्ण सुझाव केन्द्र सरकार को प्रस्तुत किये। मुख्य रूप से शिक्षा के पाँच मुख्य लक्ष्य दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे पहुँच, समानता, गुणवत्ता एवं उत्कृष्टता, प्रासंगिकता एवं मूल्य आधारित शिक्षा।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (2003-2005) ने ज्ञान की सुलभता, ज्ञान के सिद्धान्त, ज्ञान की रचना एवं बौद्धिक संपदा अधिकार, ज्ञान के उपयोग व सेवाएँ प्रदान करने की व्यवस्था पर जोर दिया।

किसी भी देश का शिक्षातंत्र उसके संविधान की तरह ही उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्त्व करता हैं। इसी कारण हमारा मुख्य उद्देश्य साम्राज्यवादी-सामंतवादी शिक्षा प्रणाली के अवशेषों को मिटाकर, भारतीय संस्कृति के अनुरूप व आधुनिकीकरण की ओर बढ़ते समुदाय की नई आवश्यकताओं, आकाँक्षाओं और माँगों के अनुसार नई प्रणाली का विकास करना हैं। स्वाधीनता के बाद देश में संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के द्वारा शिक्षा के संबंध में प्रावधान रखे गए। जिनका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय विकास, भ्रातृत्व, एकात्मकता, सामाजिक न्याय, सामाजिक परिवर्तन व समावेशी उन्नति आदि विषय रहें, कई विकासात्मक प्राथमिकताओं के साथ-साथ शिक्षा के बुनियादी तत्व भी रहे।

इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा क्षेत्र में कई प्रमुख प्रयास व नवाचार जैसे राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान, सार्वजनिक निजी सहभागिता, शैक्षिक विनियम कार्यक्रम, तकनीकी शिक्षा गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी द्वारा शिक्षा पर राष्ट्रीय मिशन, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं नि:शक्तजन शिक्षा हेतु राष्ट्रीय निगरानी समिति, राष्ट्रीय साधन सह योग्यता छात्रवृत्ति योजना आदि शिक्षा के उन्नयन के लिए प्रयासरत हैं। इन सभी प्रयासों का परिणाम यह रहा कि 1950-51 से दिसम्बर 2011 तक के आँकड़ों पर दृष्टि डालें, तो मात्रात्मक दृष्टि से विश्वविद्यालयों की संख्या बड़ी है। इसी प्रकार विद्यार्थियों का नामांकन दर 19.4 प्रतिशत हुआ हैं, जो अन्य देशों की तुलना में कम है। सकल नामांकन अनुपात तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक में अधिक हैं, जबकि बिहार, पं. बंगाल, मध्य प्रदेश में कम हैं। इसी अनुपात में संकाय सदस्यों की संख्या नहीं बढ़ी हैं, भारत एक विकासशील देश है, यदि विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में आना है, तो औद्योगिकीकरण पर अधिक बल देना होगा। यह तभी सम्भव हैं, जब विज्ञान-शोध व अनुसंधान पर धन का अधिक व्यय हो। आँकड़े दर्शाते हैं, कि उदारीकरण के बाद शोध तथा विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया, परन्तु वित्त के वितरण की समानता पर नहीं है। केन्द्रीय शोध संस्थाओं व निजी शोध संस्थाओं को उच्चशिक्षा व राज्य विश्वविद्यालय की, तुलना में अधिक वित्त पोषण हुआ।

वर्तमान में देश में करीब 695 विश्वविद्यालय, 325 राज्य विश्वविद्यालय, 195 निजी विश्वविद्यालय व 130 विश्वविद्यालय मान्य संस्थाएँ हैं। पहुँच के आधार पर, पुडडुचेरी में प्रति एक लाख जनसंख्या पर अधिक महाविद्यालय हैं, डेलोईटी भारत (Deloittee India) के रिपोर्ट के आधार पर भारत में प्रति एक लाख जनसंख्या पर 23 महाविद्यालय हैं। परन्तु संकल नामांकन अनुपात कम है। देश में 695 विश्वविद्यालय में से सिर्फ 43 केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं, ये सिर्फ 7 प्रतिशत डिग्री विद्यार्थियों को प्रदान करती हैं, जबकि राज्य विश्वविद्यालय की संख्या 325 है व ये 47 प्रतिशत उपाधि, प्रदान करती हैं, इसी प्रकार विश्वविद्यालय मान्य संस्थाएँ 130 है व 20 प्रतिशत उपाधि, राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थान 65 है व 10 प्रतिशत उपाधि व निजी विश्वविद्यालय जिनकी संस्था 195, 16 प्रतिशत उपाधि प्रदान करती हैं। उल्लेखनीय है कि राज्य विश्वविद्यालय सबसे अधिक उपाधि प्रदान करती है, जबकि केन्द्रीय विश्वविद्यालय सबसे कम परन्तु वित्त पोषण सबसे अधिक केन्द्रीय विश्वविद्यालय को 76.8 प्रतिशत प्राप्त होता है, व राज्य विश्वविद्यालयों को सिर्फ 17.61 प्रतिशत ही वित्त प्राप्त होता है। यह दिसम्बर, 2011 के आँकड़ों के आधार पर है। आँकड़े यह भी दर्शाते है कि 86 प्रतिशत विद्यार्थी स्नातक, 12 प्रतिशत स्नातकोत्तर, 1 प्रतिशत डिप्लोमा व सिर्फ 1 प्रतिशत विद्यार्थी शोध हेतु पंजीकृत होते हैं। संकायवार विद्यार्थियों का नामांकन कला वर्ग मे होता है, जबकि शोध में सबसे अधिक विद्यार्थी विज्ञान वर्ग में पंजीकृत होते हैं। जनकल्याण से जुड़े शिक्षा क्षेत्र में कम पंजीयन होता हैं (उपरोक्त सभी आँकड़े उच्चशिक्षा एक दृष्टि 2013, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग व विश्वविद्यालय आयोग की वार्षिक रिपोर्ट 2012-13 के आधार पर हैं) अन्य आँकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि विश्व स्तर पर उच्चशिक्षा में सकल नामांकन दर व शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात कम है, मानव विकास सूचकांक में शिक्षा पर मध्यम दर्जे का विकास है। यह एक मिला-जुला सूचकांक, यह जनसंख्या के स्वास्थ्य की स्थिति शिक्षा तक पहुँच व आय के अवसर को व्यक्त करता है। यह जीवन निर्वाह की स्थितियों का कुछ बोध कराता हैं। अत: विश्वविद्यालय स्तर पर वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा ज्ञान का सृजन हों व महाविद्यालय ज्ञान का संचरण करें। आजकल विश्वविद्यालय मात्र परीक्षा केन्द्रित संस्था बन गई है। अत: शिक्षण, शोध, विस्तार, गतिविधियों द्वारा विद्यार्थियों की क्षमता विकास पर ध्यान देना होगा। उच्च शिक्षा में सुधार हेतु लोकसभा में लंबित बिलों का शीघ्र निस्तारण हों जैसे - उच्च शिक्षा व शोध बिल, 2011, शैक्षणिक ट्रीब्यूनल्स बिल, 2010, विश्वविद्यालय शोध व नवाचार बिल, 2012, भारतीय सूचना एवं तकनीकी संस्था बिल, 2013 आदि। शिक्षा के प्रत्येक पक्ष पर ध्यान देना आवश्यक होगा तभी भारत पुन: शिक्षा क्षेत्र में अग्रणी देशों में गिना जायेगा। शिक्षा का मजबूत आधार वित्त, गर्वेनेस व नेतृत्व है। इसी मजबूत आधार पर पाठ्यक्रम, संकाय, शोध व आधारभूत सुविधाएँ टिकी हैं। अत: इन सभी में समन्वय के आधार पर शिक्षा के सर्वांगीण विकास के आधार पर हम योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्यरूप देने से ही समग्र विकास होगा।

वर्तमान में भारत में सकल नामांकन अनुपात 19 प्रतिशत है, जबकि विश्व स्तर पर औसत 27 प्रतिशत है। भारत सरकार ने वर्ष 2020 तक इसे 30 प्रतिशत तक ले जाने का प्रावधान रखा हैं, यह तभी सम्भव होगा, जब अधिक शिक्षकों को भर्ती, सकल नामांकन अनुपात में क्षेत्रीय विषमताएँ दूर की जाये, शिक्षण संस्थाओं को स्वायत्तता, निजी क्षेत्र की संस्थाओं के लिए स्पष्ट नितियाँ हो, राज्य व केन्द्रीय विश्वविद्यालय में समान वित्त वितरण व सुविधाएँ, राज्य स्तर पर विश्वविद्यालयों के लिए प्रभावी योजनाएँ आदि की आवश्यकता है। उपरोक्त तथ्यात्मक आँकड़े यह दर्शाते हैं, कि स्वाधीनता के बाद उच्चशिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति देश को उचित दिशा प्रदान करने के सन्दर्भ में सकारात्मक पहल है।❑

(पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर)

Freedom of any nation shall lie in the complete realisation of the identity of the nation. Mere political freedom can only be far flung; the nation has to work towards realisation of identity whatsoever. In our case, this at once becomes a huge and herculean task; as there had been no meaningful efforts for over a thousand years to create awareness of Bharatiya Sanskriti from any corner. If one looks back at the kind of education one had been receiving right from LKG to PhD, was there anything serious taught to us by way of Bharatiya Sanskriti in the curriculum?

Bharatiya Sanskriti also is very distinct from others, as it has its origin in a knowledge tradition, the Vedopanishadic knowledge tradition. Thus the roots to everything finally goes back to the Vedopanishadic knowledge tradition, as both the Hindu Dharma and Bharatiya Sanskriti are nothing other than a product of the Vedopanishadic knowledge tradition. The relationship between Bharatiya Sanskriti and Hindu Dharma is a straight and simple one; Hindu Dharma had always been protecting, preserving and transmitting Bharatiya Sanskriti from generations to generations. It is this Sanskriti that is the identity of Bharat, and since it is an offshoot of the Vedopanishadic knowledge tradition, the Vedas and Upanishads also go into the constitution of the identity of Bharat implicitly.

Free Bharat and Freedom of Education

❑ **Dr. TS Girishkumar**

For Bharat, every endeavour whatsoever has just one ultimate objective or goal, and that is Moksha. Whatever one may venture into is supposed to be in the direction of attaining the one and only ultimate desideratum, Moksha. Now what Moksha is, how it has to be internalised and things like those are well spelt out in the mighty philosophical discussions present in varying texts of manifold: that is all available for any searching minds.

Education per say, for Bharat, is also liberating; it is amply stated that "Sa Vidya Ya Vimuktaye". Vidya is that which is to provide Mukti: or Moksha. Ancient Bharatiya wisdom had so patterned our entire education in this very direction, and indeed it was meant for those desiring as well as deserving. They were careful also not to let knowledge go into the hands of the wrong people, which get demonstrated through the story of "Bhasmasura".

There had always been discussions as to whether or not political freedom of our mother land had gone to any extent towards the real free-

dom of Bharat. Here, the real freedom of Bharat need to be spelt out; and from that the real concept of 'freedom in education' has to be sought out and unpacked. Let me first try to understand the former, and subsequently, the thing in question here, the latter.

Bharat : Political Freedom and Real Freedom

Indeed it may be trivial to discuss what political freedom is; as it is so clear, obvious and a matter of common sense. In a word, it shall be some kind of 'home rule' and that had been done on the 15th of August, 1947. But then, what is it to say that 'real freedom' of Bharat is still very far away? To discuss this question, it becomes mandatory to know what Bharat is. To know Bharat is to conceive Bharat legitimately, and this becomes an immediate task for any one.

We are also involving the concept of 'identity' of a nation here. There is hardly any 'uniformity' of criteria determining 'identity' of a nation when we think about world nations. For instance, many nations in Europe have their language as their national identity. We have examples of Germany, France, England and the like. Many nations try religion for an identity as Pakistan and some others do, and many go for geographical nomenclature for identity. And where does our Bharat stand? What is the identity of Bharat? The real freedom shall be living up to the identity of any nation, and there may not be any doubts about this. Hence an understanding of the identity of Bharat ought to be seriously called for, to make headway. Fortunately for us, the wisdom of our ancestors had well spelt these things out, albeit in some indirect manner. Let us take the example of people doing 'Agnihotra' a practice that had been going on right from the Vedic times. Here we find people mentioning their addresses, as belonging to Jambudvipa, Bharatvarsha, Aryavata, so and so's son, so and so etc.

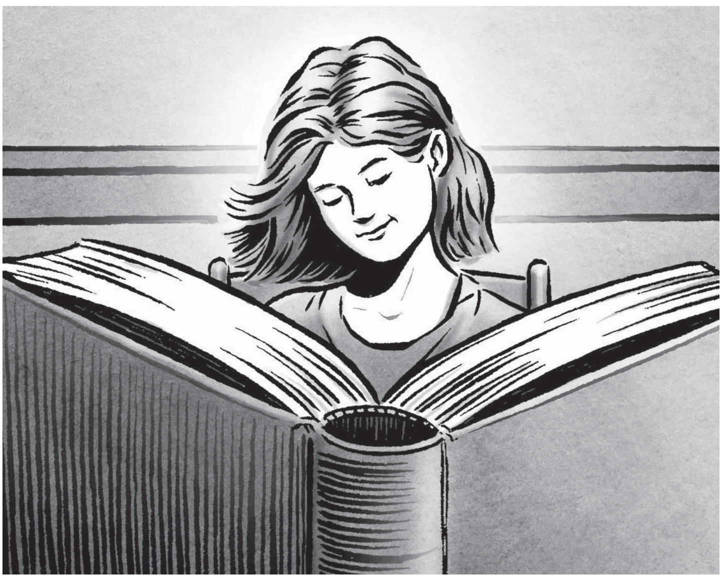

From this, one spurious historical statement at once becomes null and void; and that is the communist historians saying that the identity and unity of Bharat is a creation of the British colonial rule. This one mantra amply proves that the concept of Bharat is as old as the Vedas and Vedic practices. From this given fact that there had always been a concept of Bharat, one need not stress himself to go on discussing whether or not there had been any identity of Bharat. The identity of Bharat had gone very obvious, and that also had become a matter of common sense, some one can only start discussing about the 'one-ness' of Bharat, and seriously, it is only such people's problems of discussion. For sincere minds, these things had gone obvious to a level of certainty.

Identity of Bharat

We saw that neither language, nor geography had been the criterion of the anciently established identity of Bharat. Bharat always had something stronger and more serious criterion for her identity and that is Sanskriti or culture. The very term Sanskriti means refinement, or refined aspects of existence.

Again, Bharatiya Sanskriti also is very distinct from others, as it has its origin in a knowledge tradition, the Vedopanishadic knowledge tradition. Thus the roots to everything finally goes back to the Vedopanishadic knowledge tradition, as both the

Hindu Dharma and Bharatiya Sanskriti are nothing other than a product of the Vedopanishadic knowledge tradition. The relationship between Bharatiya Sanskriti and Hindu Dharma is a straight and simple one; Hindu Dharma had always been protecting, preserving and transmitting Bharatiya Sanskriti from generations to generations. It is this Sanskriti that is the identity of Bharat, and since it is an offshoot of the Vedopanishadic knowledge tradition, the Vedas and Upanishads also go into the constitution of the identity of Bharat implicitly.

Freedom and identity

Freedom of any nation shall lie in the complete realisation of the identity of the nation. Mere political freedom can only be far flung; the nation has to work towards realisation of identity whatsoever. In our case, this at once becomes a huge and herculean task; as there had been no meaningful efforts for over a thousand years to create awareness of Bharatiya Sanskriti from any corner. If one looks back at the kind of education one had been receiving right from LKG to PhD, was there anything serious taught to us by way of Bharatiya Sanskriti in the curriculum? I leave this question for everyone to ponder. I am not forgetting the fact here that there had always been teachers in our nation, who assume the role of Acharyas, and they had made significant differences to us, but then, those had been isolated efforts.

Our nation had become politically free, but the real freedom of Bharat can only be when the identity of Bharat is established. The identity of Bharat lies in the realisation of Bharatiya Sanskriti, and Bharatiya Sanskriti is a product of the Vedopanishadic knowledge tradition. Until this knowledge tradition is given its due, an awareness of Sanskriti shall never be complete. When all these things could be done, that day, Bharat shall really be becoming 'Viswa Guru' also. The recent making of a world Yoga day is an instance to this: how amazing was the reaction from the entire world! And we know that it was just one man's dreams and efforts, who I called as 'Kalki Avatar' some fifteen years ago.

Freed Education in Bharat

Once the nation itself is not free in the real sense of freedom, how can we discuss whether or not Education in the nation is free? Such discussions can only be trivial, as we have to formidably agree to the point that education in our nation is still either an enslaved one or an imperfect copy of what is happening in Europe. There is no point in blaming the colonial rulers for this, for; we cannot expect anything other than this from alien rule and alien education policy. The real blame lays with us only, as we haven't done anything after independence other than going on copying what had been going on in Europe.

Presently, our entire curriculum and education pattern is simply imperfect images of European education pattern. Authorities had even introduced 'credit' systems without giving any explanation other than that, that is how it is done elsewhere. The European Universities give credits between two marking points to attract more students, they run their universities mainly from the fee collected; and they devised an eye wash method to satisfy anyone who pays the fees and some kind of guarantee that they all can get a respectable degree once they pay the fees. Our Universities run from the farmer's money, and we can go one giving marks clearly, by calling a spade a spade. This is one simple example of our planers blindly acting the copy cats.

What ought to be a proper Bharatiya University?

There need not be any confusion in discussing this point. No one is going to think in terms of a reversal of time, or going back in time. An architype Bharatiya University shall not be

a going back to the Vedopanishadic knowledge tradition through time, but it ought to be a re-inventing of the same knowledge tradition given whatever present spatial and temporal context. This could be re-invention or re-creation, given what context. Secondly, truly in the Bharatiya knowledge tradition of "Ano Bhadra Kritavo Yantu Viswatha", we should be able to understand, recognise and assimilate whatever needed from any knowledge tradition from anywhere. This makes the task a double one, one, to remain rooted in Vedopanishadic knowledge tradition and two, and to keep getting connected to whatever may be happening elsewhere.

There is an expression, used by some people to signify triviality, which is re-invention of the 'wheel'. Inventing the 'wheel' is what had changed many things in the lives of primitive men, as claimed by Europeans. The wheel had been invented and had taken many turns to make knowledge of man from primitive to contemporary, and if one still tries to 'invent a wheel', then it is going to be absurdly trivial. I would like to make an analogy here, in the context of Bharatiya knowledge tradition. In many areas, perhaps in most areas of knowledge, Bharat had already done significant gain and even presented them through texts of varying kinds. The only difference is that, their methodology had been direct or experiential as compared to the European methods of knowing which are cognitive or empirical. The former has become alien to us for practical reasons, and the latter had gained our confidence along with the rest of the world.

Now, whether or not the methodology is practically available with us, the knowledge is available. What we keep experiencing from day to day European knowledge advents, is that they are slowly re-inventing the wheels those were already established in our knowledge tradition, and they know nothing about these things. Ideally, it should be possible for us to demonstrate to them our already established results and conclusions, while allowing them to reach those very conclusions empirically as they understand them better. This should be an interesting situation: Bharat gives the conclusions to the world, and the world going about learning them in their cognitive and empirical methods, taking their own sweet time. In the meantime, ideally, if it is also possible for us to somehow revive the direct, trans-sensory knowing methodology of Bharat (Yogaj), that could be yet another thing.

Thus an ideal situation with any Bharatiya University shall be, it should be a centre which primarily understands and analyses those already existing knowledge tradition through varying texts available to us and then presenting the conclusions and findings to the world for them to ponder and work on. Our work must be towards these things, and indeed it is going to be a double task: and the double task we all will have to accept.

Freed Education

A freed education in Bharat is when we already know what had been known to our ancestors. Freed education in Bharat shall be when we are able to teach the world what had been given to us by our ancestors. Freed education shall be when we are able to re-invent ancient Bharatiya knowledge in our present time and space. Free education shall be when we are able to teach every one 'Sa Vidya Ya Vimuktaye', 'Vidya Amrutamasnutaye' and the like, and make them meaningful to the entire knowing world. We should be able to meaningfully communicate to the world that knowledge is that which is liberating, and knowledge worth the name must be affecting the knower through a process of refining the knower to make him a refined existence, a 'Sanskrita' or 'Sanskari'.

To conclude, we have many tasks ahead. First of all, the nation has to become really free, and then only one can think of freeing the education. And as there is no shortcut to success, it is going to take some real long time, and much effort, from all of us: but what shall urgently be in need is tremendous patience on our part apart from complete persisting and tireless efforts.let us not stop short at nothing, and let us go on. ❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Since we know that education at the initial level makes the concepts which are strong enough to shape our future time. Thus it is more important for a young mind to shape in a proper manner. Image Akhand Bharat has to be rediscovered with the present day scenario. We should rethink about our education policy so as not to depend much on Government for getting the direction but it should build personalities to make our country stronger for a bright future. While planning last person in the queue should be thought of to make the policy successful.

Current Education System and Freedom

❑ **Dr. A. K. Gupta**

We are recognized in this present day world as intellectuals since we are responsible for guiding the society in right direction. In the present education system, we follow traditional system of getting good marks on the basis of which our skills are judged and we get an opportunity to serve the society with a job/ work in hand. But whatever may be the opportunity we get, hardly there is any attempt to change our nature.

The system of education does not provide us a chance to improve upon our basic nature and human weakness. It has been observed that at every possibility of having any advantage out of the system established, we try to get maximum benefit. We want to remain obedient and law abiding citizens but at the same time want to get maximum advantage getting benefit of provisions in between the lines of the prevalent law.

Engineers in particular Civil Engineers are well known for this. But in present society we hardly find any segment of the section left without this. Any strata in the cross section of the society is involved in this kind of activity, making others fool. But as saying goes one cannot make fool of himself/herself. There are innumerable examples which can be referred to support this.

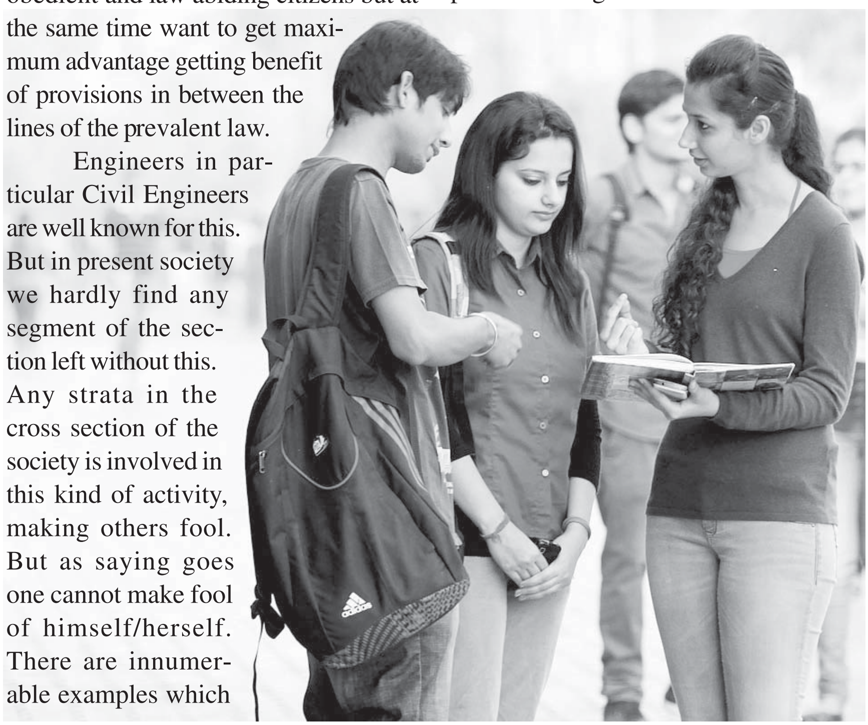

Recently in an examination advisory committee it was seen that there are good number of examples where one can find this type of human habit. Similar observation came across recently when a senior person without doing anything in the interest of the institution was elected Head of the society.

Recently national debate is going on about Hanging of a culprit. Some are against it in the name of religion. Some others are also arguing about flaws in the present system of the law. In the recent debates which a common person is shown through media creates image of the person or the party concerned. Thus Media has an important role to play by being neutral and impartial to report and let common people know the right information.

Whole system has to be improved at the grass root level. Since we

know that education at the initial level makes the concepts which are strong enough to shape our future time. Thus it is more important for a young mind to shape in a proper manner.

Image Akhand Bharat has to be rediscovered with the present day scenario. We should rethink about our education policy so as not to depend much on Government for getting the direction but it should build personalities to make our country stronger for a bright future. While planning last person in the queue should be thought of to make the policy successful.

Concept of cases or religions or any other detrimental feature should be avoided. One must be directed to think more for our motherland than petty preferences. If we all start thinking like this most of the problem will be solved. The need to improve on our education system is to make its impact on human behaviour for betterment of the society. Given the training everybody will find a right path to move ahead for better approach and for better feeling of freedom.

Challenges are many when we talk about any improvement in the present system. Initially there are resistances developed against any change from within. Financial crunch is one major problem which one has to face. Human resources is another aspect which should be thought diligently while planning for any change, etc.

Any movement has to be based on our past experience thus one should look back on ancient system of education and understanding of freedom. Freedom does not mean opportunity to do anything but at the same time while doing any work every one should feel responsibility towards our society and in turn to our country. At the early age e.g. childhood one must be given an opportunity to understand meaning of freedom and its value.

Most important aspect is to learn how to respond in typical situation. "People hardly ever make use of the freedom they have, for example, freedom of thought; instead they demand of speech as a compensation". "Let us dare to read, think, speak and write"- John Adams.

Providing only information and making our society literate does not solve the problem. This happens since there is hardly any scope left for morale education or what we call as self wisdom or swavivek. As has been shared by Swami Vivekananda Leave aside nature of slavery. We have good and rich traditions of our history, Sthapatya or Vastukala, Mountains & Rivers, Cultural and rich traditional concepts to talk about.

Good personality development starts from the top and reaches to bottom in the section of the society. Weakness at top level makes whole society to suffer. Any finer small decision may affect larger part of the society. History is rich with numerous examples e.g. Kargil war won by the Indians almost sixteen years back. Our experiences may be sour and sweet of those days, but the sacrifices made by unforgettable Indians are lessons to learn and find how valuable is our freedom.

In a democratic system the ruling party or coalition has to be more sensitive thinking about small segments of the society so that nobody is left unconcerned and not thought of. Formation process of Government and structure of the Government is important to understand. At the same time one should focus on basic education and right to do anything considered under freedom provided by our Constitution. Degree of expression and Responsibility should be simultaneously thought of.

One should find limitation of freedom and its consequences on the society. Number of events found at wrong step should be stopped or minimised. Younger generation should be kept at focal point of consideration while planning. Use of their abundant energy, time should be the focus of our whole exercise.

The whole stress should be on utilisation of our limited resources for an efficient attempt to yield meaningful result. Our rich traditions should continue to grow with amalgam of modernisation in technology. Application of local language, an indication of self pride with use of an international one should be preferred. Self esteem or national spirit should be encouraged with development of moral values in everyone should be targeted. The education system followed should not generate grim feeling. One should feel proud and blissful after getting education as per the needs of the present time. The approach followed will certainly lead our nation to move in right direction for better growth and set an example for others to follow.❑

(Professor, Structural Engineering Department, J N V University, Jodhpur)

'विद्या ददाति विनयम्'-फिर अविनय वृद्धि क्यों?

❑ **प्रो.वीर बहादुर सिंह**

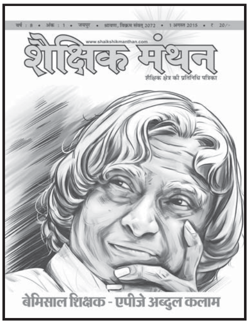

शिक्षा का केन्द्रीय उद्देश्य है कि वह मनुष्य के मस्तिष्क व आत्मा की शक्तियों को सशक्त बनाये। अभी तक तो हम भारत में उच्च शिक्षा की दशा व दिशा से ही चिंतित थे, कि वह गुणवत्ता में तो खराब है ही, अराष्ट्रीयता को भी बढ़ावा देती है। अब लगभग सात दशक बाद प्रारम्भिक शिक्षा की भी लगभग वही स्थिति है। इस कुप्रभाव से अशिक्षितों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है, प्राथमिक स्तर पर गुणवत्ता चौपट है। राजकीय एवं ग्रामीण स्कूलों में दशा शोचनीय है। शहरों व ग्रामीण स्कूलों में दो स्तर के स्कूल स्पष्ट हैं जहां हम दो तरह के नागरिकों का निर्माण कर रहे हैं और असमानता को निरन्तर बढ़ाने में लगे हैं। शहरों के राजकीय एवं प्राइवेट स्कूलों के पनपते अंतर दिनों दिन अधिक चौड़े हो रहे हैं। मानव शरीर में अनेकों शक्तियां विद्यमान है, जो बचपन में सुप्त रहती है। विद्या एवं शिक्षा द्वारा उन्हें जाग्रत किया जा सकता है।

कहते हैं कि विद्या मनुष्य को विनम्र एवं विनयशील बनाती है । परंतु भौतिक जगत में इसके विपरीत ही दृष्टिगोचर हो रहा है। सबसे शिक्षित कहे जाने वाले ही कहीं अधिक विध्वंसक हो रहे हैं। कारण सम्भवत: विद्या व शिक्षा में कहीं कोई भिन्नता तो नहीं? अगर भाव एक ही हो तो भी कहीं न कहीं उनकी व्याख्या एवं उपयोगिता में तो अंतर है ही।

विद्या अथवा ज्ञान, अज्ञात को ज्ञात करने की पद्धति है, जिसमें अध्ययन एवं अध्यापन सम्मिलित है। इसमें यदि अभ्यास एवं प्रयोग का पुट और जुड़ जाये तो यह शिक्षा हो जाती है। शिक्षा के बारे में अनेकों शिक्षाविदों ने अलग - अलग व्याख्या दी है। जैसे 'सभी को शिक्षा का तात्पर्य किसी को शिक्षा नहीं', (डुगलास बुश, 1955) आदि। परंतु गुणात्मक शिक्षा के लिए अनेकों विद एकमत हैं। जहाँ सभी कहते हैं कि शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण (शरीर, मस्तिष्क व आत्मा) विकास के लिए आवश्यक है। वहीं शिक्षा को रोजगार का साधन मानना गाँधीजी के अनुसार वैचारिक दोष है। उनके अनुसार शरीर रोजगार का साधन है और पाठशाला चरित्र निर्माण का स्थल। अत: उद्देश्यहीन शिक्षा जीवन को दिशा नहीं देती।

इसीलिए अनेकों तथाकथित शिक्षित भ्रमित होकर असामाजिक कृत्यों की तरफ अग्रसर हो जाते हैं। यदि हमारे शिक्षित नवयुवक इस प्रकार व्यवहार करें तो इसे अशिक्षा या कुशिक्षा ही कहा जायेगा। वर्तमान शिक्षा सर्वांगीण विकास व जीवन को बेहतर बनाने का साधन नहीं रहा है। यह सोचने-विचारने की क्षमता को विकसित नहीं करती। अध्यापन पद्धति मात्र सूचना का आदान-प्रदान ही है। संवाद, कल्पना, विश्लेषण व निर्णय की क्षमता अब विलुप्त प्राय: ही है। भावशून्य और यान्त्रिक शिक्षा तो जड़ है, गतिहीन है-जीवन में कोई उत्साह नहीं जगाती बल्कि भय और निराशा को भी पनपाती है।

यह आत्मसम्मान, अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा के लिए भी जागरूक नहीं करती, ज्ञान के प्रति रुचि नहीं बन पाती और इस प्रकार सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण न कर श्रेष्ठ नागरिक नहीं बनाती। सही शिक्षा हमारी अंत:दृष्टि को

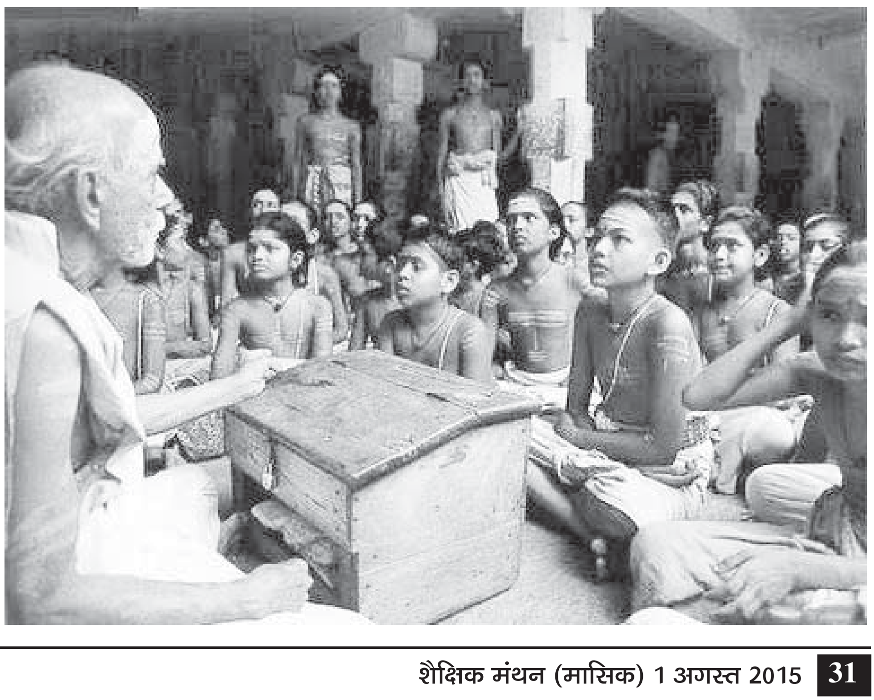

गहरा कर हमारे ज्ञान मंडल को फैला देती है, जिससे यथार्थ दृष्टिकोण का विकास होता है।

शिक्षा का केन्द्रीय उद्देश्य है कि वह मनुष्य के मस्तिष्क व आत्मा की शक्तियों को सशक्त बनायें। अभी तक तो हम भारत में उच्च शिक्षा की दशा व दिशा से ही चिंतित थे, कि वह गुणवत्ता में तो खराब है ही, अराष्ट्रीयता को भी बढ़ावा देती है। अब लगभग सात दशक बाद प्रारम्भिक शिक्षा की भी लगभग वही स्थिति है। इस कुप्रभाव से अशिक्षितों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है, प्राथमिक स्तर पर गुणवत्ता चौपट है। राजकीय एवं ग्रामीण स्कूलों में दशा शोचनीय है। शहरों व ग्रामीण स्कूलों में दो स्तर के स्कूल स्पष्ट हैं जहां हम दो तरह के नागरिकों का निर्माण कर रहे हैं और असमानता को निरन्तर बढ़ाने में लगे हैं। शहरों के राजकीय एवं प्राइवेट स्कूलों के पनपते अंतर दिनों दिन अधिक चौड़े हो रहे हैं। मानव शरीर में अनेकों शक्तियाँ विद्यमान है, जो बचपन में सुप्त रहती है। विद्या एवं शिक्षा द्वारा उन्हें जाग्रत किया जा सकता है। शिक्षा के अनेक पहलू हैं, यथा-शिष्य, शिक्षक, स्कूल, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक वातावरण, विषय सामग्री या पाठ्यक्रम तथा उसे प्रदान या हस्तांतरण करने की विधि, शैली व तकनीक।

इस पूरे उपक्रम में शिक्षक एक अनुदेशक ही नहीं बल्कि एक सहायक व निर्देशक का कार्य भी करता है, वह मार्गदर्शक भी होता है, उसकी निपुणता सुझाने में कहीं अधिक है, बनिस्पत थोपने के।

ज्ञान और चारित्रिक विकास, जो शिक्षा के मूल उद्देश्य हैं, के लिए मनीषियों व शास्त्रियों ने सात साधन बनाये हैं:- शारीरिक चेतना, इन्द्रिय चेतना, मानसिक चेतना, भावात्मक चेतना, बौद्धिक चेतना, विवेक चेतना और अंतश्चेतना। शारीरिक चेतना, कर्म शक्ति है तथा इन्द्रिय चेतना, बाह्य जगत से सम्पर्क साधती है। मानसिक चेतना इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये गये विषय का विश्लेषण करती है और भावात्मक चेतना, इन्द्रिय चेतना और मानसिक चेतना की संचालक शक्ति है, यही चरित्र के लिए उत्तरदायी है। बौद्धिक चेतना निर्णय चेतना शक्ति है और विवेक चेतना ग्राह्य व अग्राह्य के निर्धारण के लिए है। अंतश्चेतना से बुरे का त्याग और अच्छे को ग्रहण करने की शक्ति आती है। छोटे बच्चों/ शिष्यों में आनुवांशिक एवं कर्मसंस्कार जो अच्छे व बुरे दोनों हो सकते हैं, विद्यमान रहते हैं। उचित वातावरण तथा अनुकूल परिस्थितियों में बुरे संस्कार दब कर अच्छे संस्कार अंकुरित हो जाते हैं। चूंकि वातावरण व परिस्थितियाँ सदैव अनुकूल नहीं रहती अत: शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए परिस्थितियों व वातावरण का सदैव ध्यान रखना आवश्यक है। अनुशासनहीनता और चारित्रिक पतन की अनुभूति जो हमें देखने को मिल रही है, का मुख्य कारण उद्देश्यों से भटकाव तथा विपरीत परिस्थितियां और वातावरण ही है। मस्तिष्कीय प्रशिक्षण के अलावा भावात्मक प्रशिक्षण भी आवश्यक है, जो नलिकाविहीन अंत:स्रावी ग्रंथियों के ऊपर निर्भर है। प्रतिकूल शैक्षणिक वातावरण का उभार, प्रशासनिक अकर्मण्यता, बालिका शिक्षा की तरफ उदासीनता, संसाधनों व अच्छे शिक्षकों की कमी आदि अनेकों बाधाएँ शिक्षा की गुणवत्ता को तिरोहित करने में सहायक हैं। कक्षा में अनुत्तीर्ण न करने का आशय यह नहीं है कि पढ़ाया ही न जाये और सतत मूल्यांकन भी न हो। बच्चों की मानसिक शक्ति के अनुसार सभी को एक समान पाठयक्रम का प्रावधान हितकर नहीं है।

क्षमता के अनुसार कम विषय/ पाठयक्रम पढ़कर भी छात्र को मूल्यांकन के आधार पर आगे की कक्षा में प्रोन्नत किया जा सकता है, पाँच वर्ष का पाठयक्रम यदि कोई छात्र छ: या सात वर्ष में कर लेता है तो इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए। द्रुत गति एवं मंद गति छात्र में मानसिक स्तर होते हैं अत: वह उसी के अनुसार ज्ञान के सोपान पर बढ़ सकेगा।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 का लागू होना मात्र शिक्षा को अग्रसर व व्यापक बनाने में तभी सार्थक होगा, जब अध्यापन के साथ अभ्यास व प्रयोग भी सम्मिलित हो और नीरस पाठयक्रम के स्थान पर उपयोगी व चिर-परिचित विषय सामग्री हो। संसाधनों की उपलब्धता में उचित संख्या में शिक्षकों का प्रावधान व अन्य सुविधाएं जुटाना आवश्यक है।

शिक्षकों को यथासंभव शिक्षा से विलग कार्यों में लिप्त नहीं किया जाये तथा जिला स्तर पर प्रत्येक शिक्षक का एक पूर्व निर्धारित प्रोफोर्मा के अनुसार वर्ष में दो बार मूल्यांकन किया जाये। शिक्षा के अधिकार के साथ-साथ शिक्षित होने व करने के कर्त्तव्य/ विधान का भी समावेश हो, तो शिक्षा के अधिकार का सफल क्रियान्वयन संभव हो सकेगा। ❑

(पूर्व कुलपति, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि., उदयपुर)

अनुकरण की शिक्षा

❑ बनवारी

पिछली एक शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा ने हमें जितना नियंत्रित किया है, उतना बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक चला ब्रिटिश राज भी नहीं कर पाया था। अंग्रेजी शिक्षा ने हमें अपनी सभ्यता के मूल मार्ग से भटका दिया है और उसने हमसे अपने पिछले इतिहास को समझने की दृष्टि छीन ली है। हमारे इतिहास की पिछली छह-सात शताब्दियों का काल एक तरह का विपरीत काल था। इस काल में एक आँधी की तरह विदेशी आक्रमणकारी शक्तियाँ आईं और हम धीरे-धीरे उनके नियंत्रण में चले गए। इतिहास में सबके साथ ऐसा होता रहता है। फिर अनुकूल समय आता है और आँधी-पानी में घर की जो टूट-फूट हुई है उसे लोग देखते हैं। अपने चिर-परिचित तरीकों से उसे फिर से निर्मित करने का प्रयत्न करते हैं। इस बीच जो नई विधियाँ और नए विचार आए हैं, उन्हें भी आत्मसात करते हैं। इस सब का उपयोग करते हुए वे अपने जीवन को फिर पटरी पर लाते हैं और अपनी स्वाभाविक समृद्धि के लिए फिर से जुट जाते हैं।

लेकिन सन 1947 में जब हम स्वतंत्र हुए, अपने पुनर्निर्माण के बारे में हमने नहीं सोचा। हमारे अंग्रेजी शिक्षा में पगे नेतृत्व को लगा कि दुनिया बदल गई है। यह एक नई और विचारों व भौतिक स्वरूप में बिल्कुल नई दुनिया है। यह दुनिया उन्हीं यूरोपीय लोगों ने बनाई है जो अब तक लगभग पूरी दुनिया को अपना उपनिवेश बनाए हुए थे। अब उनका जुआ उतर गया है, इसलिए हम जिस दिशा में आगे बढ़े हैं उसी दिशा में आगे बढ़ते हुए उनके बराबर पहुँच सकते हैं। इस परिकल्पना के बाद उन्हें न अपनी सभ्यता को समझने की आवश्यकता रह गई थी, न यूरोपीय सभ्यता को समझने की। वे तो जिस तरफ यूरोपीय लोग दौड़ रहे थे, उधर दौड़ पड़े और थोड़े ही समय में हांफने लगे।

अंग्रेजी शिक्षा का सबसे घातक प्रभाव यह हुआ है कि वह हमें आत्म-विस्मृति की ओर ले गई है। अंग्रेजी शिक्षा ने हमारी बुद्धि में यह भ्रामक धारणा डाल दी है कि अब तक का हमारा और पूरी दुनिया का सभ्यतागत अनुभव निरर्थक हो गया है। यूरोपीय लोगों ने पिछली कुछ शताब्दियों में एक ऐसी वैचारिक क्रांति कर दी है कि अब किसी को पीछे मुड़ कर देखने की आवश्यकता नहीं है। यूरोपीय स्वयं अपने अतीत को तिरस्कार से देखने लगे हैं। वह गरीबी, अन्याय और उत्पीड़न का काल था, यह समृद्धि, न्याय और स्वेच्छा से जीने का काल है। अगर इस काल की कुछ समस्यायें हैं भी तो उन्हें हल करने की प्रौद्योगिकीय विधियाँ निकाल ली जाएंगी। सब समस्याएँ प्रौद्योगिकीय विधि से हल की जा सकती हैं। एक तरह से प्रौद्योगिकी आज की दुनिया का जादू-टोना हो गई है।

इस अंधानुकरण में हमें यह देखने की आवश्यकता ही नहीं हुई कि आज की यूरोपीय दुनिया सचमुच क्या कोई नई दुनिया है? क्या वह अपने ही पूर्व-रूप का रूपांतरण नहीं है? क्या एक नई दुनिया के रच गए होने के भ्रम में हम अपना यूरोपीयकरण तो नहीं कर रहे? ये सारे प्रश्न हमारे बौद्धिक जगत के मन में उठने चाहिए थे। उन लोगों के मन में भी, जो यूरोपीय भौतिक जीवन और उसके वैचारिक ढाँचे को सकारात्मक दृष्टि से देखते हैं। क्योंकि यह किसी भी बौद्धिक जिज्ञासा की सामान्य अंतरंग प्रक्रिया होती है कि प्रतिप्रश्न किए जाएं। लेकिन जो प्रतिप्रश्न यूरोप में अपनी इस तथाकथित नई सभ्यता के बारे में किए जा रहे थे, उन्हें भी हमने गंभीरता से नहीं लिया। वास्तव में अनुकरणकर्ता प्रश्न करने से सदा डरता रहता है।

यूरोपीय सभ्यता के इस अनुकरण को अंग्रेजी भाषा ने हमारे लिए सहज बना दिया। अगर हमारे पढ़े-लिखे लोगों का विमर्श हमारी अपनी भाषाओं में हो रहा होता तो अनुकरण आसान नहीं था। अगर हमारे सार्वजनिक विमर्श की भाषाएँ हमारी अपनी भाषायें होती तो वे हमें पग-पग पर अपनी वैचारिक कोटियों का स्मरण करवाती। तब उन वैचारिक कोटियों के आधार पर अपनी वर्तमान दिशा को जाँचना-परखना हमारे लिए आवश्यक हो जाता। अपनी भाषा में विमर्श करने पर आप

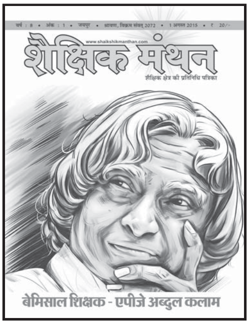

हमारे नायकों में से केवल गाँधीजी ने इसे सबसे पहले और सबसे अच्छी तरह देखा था। उन्होंने 1915 में भारत आते ही हमारे सार्वजनिक विमर्श का स्वरूप और भाषा दोनों को बदलने का प्रयत्न किया था। अंग्रेजी शिक्षा को तो वे हमारी सब समस्याओं की जड़ समझते थे। और उन्हें लगता था कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग न केवल अपनी सभ्यता के मार्ग से भटक गए हैं, बल्कि वे शेष समाज को भी भटकाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने सबसे पहले कांग्रेस को वकीलों-डॉक्टरों के दायरे से बाहर निकाल कर साधारण भारतीयों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। 'हिंद स्वराज' में उन्होंने इस शिक्षित वर्ग पर बहुत निर्मम होकर टिप्पणियाँ की हैं। उन्होंने युवकों से अंग्रेजी शिक्षा संस्थानों का बहिष्कार करने के लिए कहा और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की नींव डालने का प्रयत्न किया।

अधिक समय तक आत्मविस्मृत नहीं रह सकते। नए विचारों और नई भौतिक परिस्थितियों का जादू कुछ समय तक सब पर रहता है। लेकिन अपनी भाषा हमें अपने वर्तमान का आगा-पीछा देखने-समझने के लिए प्रेरित करती है। इस मीमांसा से ही हम सही दिशा की ओर बढ़ पाते हैं।

अंग्रेजी भाषा के व्यवहार ने हमें अपने इतिहास-बोध से, अपनी सभ्यता के बोध से काट दिया। भाषा केवल विचारों की वाहक नहीं होती, वह विचारों की नियामक भी होती है। उसमें हमारा जातीय अनुभव निबद्ध होता है। विभिन्न भाषाओं के समानार्थी दिखने वाले शब्द भी विभिन्न व्यंजनायें देते हैं। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कई बार भाषा हमारे विचार करने की दिशा भी निर्धारित कर देती है। विचारों पर यह नियंत्रण वह इतनी सहजता से करती है कि अक्सर हमें उसका भान नहीं होता। अंग्रेजी भाषा ने पिछली एक शताब्दी में विशाल साहित्य निर्मित कर लिया है। इस साहित्य से स्कूली-विश्वविद्यालयी शिक्षा की विषयवस्तु गढ़ी गई है। इस समूचे तंत्र ने विश्व भर में अपना विस्तार कर लिया है।

शिक्षा के इस तंत्र ने यूरोपीय जाति को विश्व भर के बौद्धिक औपनिवेशीकरण का सरल मार्ग उपलब्ध करा दिया है। यह औपनिवेशीकरण कुछ समय पहले तक के राजनीतिक औपनिवेशीकरण से और अभी के व्यापारिक औपनिवेशीकरण से अधिक घातक है। क्योंकि उसने हमारी बुद्धि को आविष्ट कर लिया है। किसी प्रेताविष्ट व्यक्ति की तरह हम आत्म-विस्मृत होकर वही बोलते हैं जो प्रेत हमसे बुलवाना चाहता है। हमारी तर्कबुद्धि भी इस मायाजाल को काट नहीं पाती। क्योंकि हम इस शिक्षातंत्र के भीतर ही तर्क कर रहे होते हैं, उससे पार नहीं देख पाते। हमारी बुद्धि यूरोपीय जाति के बौद्धिक विमर्श से बंधी रहती है और उन्हीं के इशारों पर नाचती रहती है।

हमारे नायकों में से केवल गाँधीजी ने इसे सबसे पहले और सबसे अच्छी तरह देखा था। उन्होंने 1915 में भारत आते ही हमारे सार्वजनिक विमर्श का स्वरूप और भाषा दोनों को बदलने का प्रयत्न किया था। अंग्रेजी शिक्षा को तो वे हमारी सब समस्याओं की जड़ समझते थे। और उन्हें लगता था कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग न केवल अपनी सभ्यता के मार्ग से भटक गए हैं, बल्कि वे शेष समाज को भी भटकाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने सबसे पहले कांग्रेस को वकीलों-डॉक्टरों के दायरे से बाहर निकाल कर साधारण भारतीयों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। 'हिंद स्वराज' में उन्होंने इस शिक्षित वर्ग पर बहुत निर्मम होकर टिप्पणियाँ की हैं। उन्होंने युवकों से अंग्रेजी शिक्षा संस्थानों का बहिष्कार करने के लिए कहा और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की नींव डालने का प्रयत्न किया। उनके नेतृत्व में कांग्रेस की भाषा और दिशा बदल गई।

महात्मा गाँधी ने देश के स्वाधीनता संग्राम को एक नया लक्ष्य दिया। उन्होंने इंडिपेंडेन्स की जगह स्वराज की प्राप्ति को कांग्रेस का लक्ष्य बना दिया। लेकिन उनके कांग्रेस की कमान संभालने के बाद जो अंग्रेजी पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी राजनीति में आई वह आत्मविस्मृत हो चुकी थी। उसे इंडिपेंडेन्स और स्वराज का अंतर समझ में नहीं आया। वह पीढ़ी डिस्कवरी ऑफ इंडिया में उलझी रही और अंग्रेज सत्ता हस्तांतरित करके चले गए। यह सत्ता का हस्तांतरण इंडिपेंडेन्स से भी बुरा था। इस हस्तांतरण में अंग्रेज चले गए, उनकी सत्ता बनी रही। उन्होंने जो तंत्र खड़ा किया था, वह ज्यों का त्यों रहा। हम उसी को चलाने में अपना गौरव देखने लगे। आज भी हमारे शिक्षित लोग यह कहते नहीं थकते कि अंग्रेजों के खड़े किए इस तंत्र को हम कितनी कुशलता से संभाले हुए हैं।

नई दुनिया के गढ़े जाने का भ्रम भारत तक सीमित नहीं है। जिन देशों ने औपनिवेशिक सत्ता को हटाने के साथ-साथ उनकी भाषा को भी विदा कर दिया, वे भी यूरोपीय-अमेरिकी शिक्षा-तंत्र के प्रभाव में हैं। उनके यहाँ पढ़े-लिखे लोगों का जो वर्ग यूरोपीय भाषाओं में पारंगत होकर वहाँ की शिक्षा सामग्री को अपनी भाषाओं में ढालता रहता है उसने अपनी नई शिक्षित पीढ़ी को एक पराई सभ्यता का गुलाम बना दिया है। वास्तव में 1950 के आसपास जब यूरोपीय राजनीतिक नियंत्रण से अधिकतर देश मुक्त हुए, यूरोप-अमेरिका में आर्थिक समृद्धि का एक नया दौर आरंभ हुआ। इस दौर में यूरोप-अमेरिका का स्वरूप बदल गया। उसकी तड़क-भड़क ने ही आज पूरी दुनिया को मोहाविष्ट किया हुआ है।

विश्व के अन्य देशों का यूरोप-अमेरिका की समृद्धि से चमत्कृत होकर उसी मार्ग पर चल पड़ना चकित करने वाला नहीं है। यूरोप-अमेरिका में पिछली दो शताब्दियों में जो तंत्र खड़ा हुआ है उसके पीछे उनकी शास्त्रीय बुद्धि का आधार है। उसके पार वही झाँक सकता है जिसके पास अपनी उतनी ही विलक्षण शास्त्रीय बुद्धि हो। भारत के पास वह शास्त्रीय बुद्धि है और इसलिए उसका ही यह दायित्व था कि वह केवल अपने लिए नहीं बल्कि विश्व भर के सभी समाजों के लिए अपनी सभ्यता को परिष्कृत-परिवर्द्धित करते हुए उस दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग निकालें। यहाँ यह समझना भी आवश्यक है कि हमने अपने शास्त्रों की लंबे समय से समयानुकूल रचना नहीं की। सभी समाजों को अपने समय के अनुसार अपने शास्त्रीय ज्ञान को ढालते रहना होता है। यह काम तभी हो सकता था जब हमारी निष्ठा हमारी अपनी सभ्यता में बनी रहती। लेकिन ब्रिटिश राज में फले-फूले पराश्रित वर्ग ने सार्वजनिक विमर्श को अंग्रेजी में सीमित रखा और सत्ता पर उनके नियंत्रण के कारण अंग्रेजी शिक्षा बढ़ती-फैलती रही। इस शिक्षा ने हमारी समूची प्रतिभा को यूरोप के अनुकरण की ओर धकेल दिया है। अंग्रेजी शिक्षा की इस गुलामी को छोड़े बिना हम स्व-तंत्र होने की आशा नहीं कर सकते।❑

शिक्षा का प्रबन्धन

शिक्षा के प्रभावी प्रबन्धन के लिए शिक्षण संस्थाओं के प्रशासनिक ढाँचे में ठोस परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। शिक्षा का संचालन तंत्र पूरी तरह से अप्रभावी है और पारदर्शिता एवं जवाबदेही का नितान्त अभाव है। ये संस्थाऐं नौकरशाही, लालफीताशाही, तानाशाही एवं राजनैतिक हस्तक्षेप की भी शिकार है। हमें एक जवाबदेह, पारदर्शी एवं जिम्मेदार संगठन संरचना की आवश्यकता है जो पूर्ण रूपेण नौकरशाही के हस्तक्षेप से मुक्त हो और पेशेवर योग्य शिक्षकों के हाथों में हो। इसके लिए संवैधानिक स्वायत्त आयोग का केन्द्रीय स्तर पर किया जाना आवश्यक होगा। यह ऐजेन्सी पूर्णरूपेण शिक्षाविदों से युक्त हो और शिक्षा व्यवस्था को नियमित करने वाली हो। कुशल प्रबन्धन के लिए भारतीय शिक्षा सेवा की स्थापना की पहल करना शिक्षा हित में होगा।

❑ प्रो. जे.पी. सिंघल

आज भारत की शिक्षा व्यवस्था अनेक झंझावातों एवं चुनौतियों से त्रस्त है। हमारे देश की वर्तमान शिक्षा की न तो कोई स्पष्ट दृष्टि है और न ही कोई आत्मा। यह न तो मानव के निर्माण की सुदृढ़ नींव ही डाल रही है और न ही रोजगार का सशक्त विकल्प प्रस्तुत कर रही है। शिक्षा व्यवस्था से शिक्षा के मूल उद्देश्य विमुक्ति, शील एवं साधना पूरी तरह से गायब हैं। सृजनता, नवाचार एवं शोध विलुप्त हो रहे हैं एवं हम एक घिसी-पिटी व्यवस्था एवं पाश्चात्य देशों के अनुकरण में लगे हुए हैं। न तो शिक्षा सभी को सुलभ है और न ही सभी की पहुँच के अन्दर। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एक सपना ही रह गया है और शिक्षा मात्र सूचनाएँ प्रदान करने का साधन बन कर रह गई है। शिक्षा में न तो स्वायत्तता है और न ही अनुशासन। इन सभी चुनौतियों पर विजय प्राप्त करने के लिए वर्तमान प्रबन्धन व्यवस्था अक्षम एवं अप्रभावी साबित हो रही है। शिक्षा के प्रबन्धन में पारदर्शिता एवं जवाबदेही का नितान्त अभाव है और यह नौकरशाही एवं राजनैतिक अतिक्रमण का शिकार है। अत: भारत के शैक्षिक प्रबन्धन को प्रभावी एवं कुशल बनाने की आवश्यकता है। कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे निम्न प्रकार हैं -

शिक्षा की दृष्टि (Vision)

लम्बे समय से हम शिक्षा को खण्ड-खण्ड में बाँटकर देख रहे हैं, परिणामस्वरूप हमारी सृजनता एवं कल्पनाशक्ति का ह्रास हुआ है और विद्यार्थी की अन्तर्निहित बुद्धिमता को नुकसान हुआ है। हमें शिक्षा को दीर्घकालीन दिशा देने के लिए समग्र शिक्षा के भारतीय दृष्टिकोण को स्वीकार करना होगा। जिसमें मानव निर्माण के लिए सभी को सुलभ एवं समर्थ, मूल्य आधारित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने, शैक्षणिक उत्कृष्टता, नैतिकता, नवाचार, शोध को प्रोत्साहन देने, समाज एवं उद्योग के साथ जुड़ने एवं पारदर्शी, उत्तरदायी, उद्देश्यात्मक, न्यायपूर्ण एवं प्रभावी प्रबन्धन को सम्मिलित करना होगा।

शिक्षा का नियोजन (Planning)

हमारे देश में शिक्षा के सम्बन्ध में स्पष्ट एवं सुदृढ़ नियोजन का नितान्त अभाव है। भविष्य की आवश्यकताओं का आकलन किये बिना विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय प्रारम्भ किये जा रहे हैं जिनमें अनेक प्रकार की विकृति देखने को मिल रही है। अच्छे प्रबन्धन के लिए नियोजन की महती आवश्यकता है जिसमें निम्न के नियोजन को सम्मिलित करना होगा।

1. **विकास एवं विस्तार-** गत वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में हुआ विस्तार पूरी तरह से अनियन्त्रित एवं असंतुलित रहा है। पिछले वर्षों में निजी क्षेत्र के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के अनियोजित प्रवेश ने अनेक प्रकार के संकटों एवं घपलों को जन्म दिया है और गुणवत्ता एवं नैतिकता हासिये पर आ गई है। इसके लिए दीर्घकालीन विस्तार एवं ढाँचागत सुविधाओं की योजना का निर्माण किया जाना आवश्यक होगा। गैर नियोजित विस्तार से गुणवत्ता में कमी आयेगी और असंतुलन बढ़ेगा।

2. **मानवीय संसाधन-** आज शिक्षा क्षेत्र में मानवीय संसाधनों की स्पष्ट योजना की आवश्यकता है जिससे आने वाले समय में कितने एवं किस प्रकार के शिक्षकों की आवश्यकता होगी उनका सही अनुमान लगाकर उनकी व्यवस्था करने के उपाय निश्चित किये जाएँ। इसमें उत्कृष्ट संकाय विकास के लिए गम्भीर प्रयासों को सम्मिलित करना होगा। वर्तमान में चल रही संविदा व अस्थायी व्यवस्था पर भी इससे अंकुश लगेगा एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराया जाना सम्भव होगा।

3. **वित्तीय संसाधन-** शिक्षा के तन्त्र को चलाने के लिए कितने धन की आवश्यकता होगी और वे वित्तीय साधन कैसे उपलब्ध कराये जा सकेंगे इसकी पूर्व तैयारी आवश्यक है। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के सार्वजनिक खर्च में तो बढ़ोतरी

करनी ही होगी, साथ ही पूंजी लगाने के संस्थागत तंत्र को भी विकसित करना होगा। इसके अलावा पूर्व छात्रों का दोहन, अनिवासी भारतीयों का योगदान, अन्तर संस्थागत सहयोग, सामाजिक सहयोग, दानदाताओं के स्त्रोतों का भी दोहन करने की आवश्यकता होगी। उद्योग जगत को शिक्षा विकास के लिए सी.एस.आर. के एक हिस्से के योगदान हेतु भी कहा जा सकता है। पाठ्यक्रमों की विषय सामग्री पर ध्यान देने की आवश्यकता है। विषय सामग्री में ऐसी बातें अवश्य ही सम्मिलित की जायें जो राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने वाली हों एवं मानव निर्माण में समर्थ भी।

4. **शैक्षणिक नियोजन**- शैक्षणिक श्रेष्ठता के लिए पाठयचर्या एवं पाठयक्रमों का निर्धारण राष्ट्रीय एवं वैश्विक प्रवृति, समाज तथा विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाना आवश्यक है। यह छात्र केन्द्रित होना चाहिए।

प्रशासनिक ढाँचा (Administration)

शिक्षा के प्रभावी प्रबन्धन के लिए शिक्षण संस्थाओं के प्रशासनिक ढाँचे में ठोस परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। शिक्षा का संचालन तंत्र पूरी तरह से अप्रभावी है और पारदर्शिता एवं जवाबदेही का नितान्त अभाव है। ये संस्थाएँ नौकरशाही, लालफीताशाही, तानाशाही एवं राजनैतिक हस्तक्षेप की भी शिकार है। हमें एक जवाबदेह, पारदर्शी एवं जिम्मेदार संगठन संरचना की आवश्यकता है जो पूर्ण रूपेण नौकरशाही के हस्तक्षेप से मुक्त हो और पेशेवर योग्य शिक्षकों के हाथों में हो। इसके लिए संवैधानिक स्वायत्त आयोग का केन्द्रीय स्तर पर किया जाना आवश्यक होगा। यह ऐजेन्सी पूर्णरूपेण शिक्षाविदों से युक्त हो और शिक्षा व्यवस्था को नियमित करने वाली हो। कुशल प्रबन्धन के लिए भारतीय शिक्षा सेवा की स्थापना की पहल करना शिक्षा हित में होगा।

स्वायत्तता (Autonomy)

प्राचीन समय में भारत शिक्षा के क्षेत्र में विश्व गुरु हुआ करता था और देश की अनेक शिक्षण संस्थाएँ, ज्ञानपीठ के रूप में विश्वविख्यात थी। ये संस्थाएँ बाह्य नियन्त्रण से पूर्ण रूपेण मुक्त थी और इसी कारण ये संस्थाएँ उत्कृष्ट उपलब्धि हासिल कर पाई थी। शिक्षण संस्थाओं को शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वायत्तता को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने, शीर्ष प्रतिभाओं को आकर्षित करने, श्रेष्ठता का उच्च मानदण्ड स्थापित करने एवं शिक्षा को सर्वसमावेशी बनाने के लिए संस्थाओं को खुले वातावरण में कार्य करने की आजादी प्रदान करनी होगी। शिक्षण संस्थाओं का पाठ्यक्रम निर्माण, मूल्यांकन, अध्ययन सामग्री, विद्यार्थी प्रवेश, अनुसंधान इत्यादि में शैक्षणिक स्वायत्तता तथा मानव संसाधन प्रबन्धन, क्रियान्वयन, नियन्त्रण में प्रशासनिक स्वायत्तता और अपने बजट प्रबन्धन में स्वायत्तता होनी चाहिए। हमें संतुलित स्वायत्तता की अवधारणा को स्वीकार करना होगा। जिसमें ऐसे अंकुश अवश्य लगाये जा सकते हैं जिनसे निरंकुशता न आये एवं मूल उद्देश्य से हम नहीं भटकें। इसके लिए सुदृढ़ मानक निर्धारित किये जा सकते हैं।

शिक्षा का समाज एवं उद्योग से जुड़ाव (Social Engagement)

आज भी हमारे देश में उद्योग जगत एवं शैक्षणिक संस्थाओं, शोध एवं सामाजिक आवश्यकताओं, शोधकर्ताओं एवं शैक्षणिक संस्थानों के मध्य विचार विमर्श एवं सहभागिता का पूर्णतया अभाव है। इसके लिए उद्योग, समाज एवं शैक्षणिक संस्थाओं के शोध एवं अन्य कार्यों में परस्पर सहयोग की सतत् प्रक्रिया प्रारम्भ करनी होगी। विभिन्न उद्योगों एवं सामाजिक संस्थाओं को अपने उत्पादन के सम्बन्ध में शोध एवं अनुसंधान करने, उनके मानवीय संसाधन-विकास एवं प्रशिक्षण के कार्यक्रम अपने हाथ में लेने, संस्था के प्रबन्धन की नवीन व्यूह रचना तैयार करने तथा सलाहकार के रूप में नियुक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे शिक्षण संस्थान में उत्कृष्टता आयेगी और नवाचारों को प्रोत्साहन मिलेगा। इसके अलावा शिक्षण संस्थान के वित्तीय संसाधन भी बढ़ेंगे।

मूल्यांकन (Evaluation)

भारत में रोग ग्रस्त शिक्षा को पुनर्जीवित करने, विश्वस्तरीय गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने, शैक्षणिक सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था का निरन्तर मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। इसके लिए सुदृढ़ एवं पारदर्शी सतत् मूल्यांकन व्यवस्था स्थापित करनी होगी। सभी शिक्षण संस्थाओं के लिए प्रत्यायन आवश्यक हो। प्रत्येक विद्यमान संस्था का तीन वर्ष में एक बार आवश्यक रूप से निर्धारित मानदण्डों के आधार पर प्रत्यापन किया जाये। इसके अलावा प्रत्येक नवीन स्थापित होने वाली संस्था का छात्रों के प्रवेश के पूर्व प्रत्यापण आवश्यक हो। मूल्यांकन का कार्य पारदर्शी हो तथा केन्द्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यापन ऐजेन्सी के साथ-साथ प्रत्येक राज्य में भी राज्य स्तरीय इस प्रकार की स्वायत्त ऐजेन्सी हो। मूल्यांकन का सम्पूर्ण परिणाम ऑनलाइन हो और उसमें सुधार के कदम उठाने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम हो। मूल्यांकन ऐजेन्सी का मजबूत तन्त्र स्थापित किये जाने की आवश्यकता है जो विभिन्न विशेषज्ञों एवं सुप्रसिद्ध शिक्षाविदों से युक्त होना चाहिए और जिसे मूल्यांकन सम्बन्धी अन्तिम अधिकार प्राप्त हो। इसके अलावा संस्थाओं के वित्तीय अंकेक्षण एवं कार्यनिष्पादन अंकेक्षण की सुदृढ व्यवस्था स्थापित करनी होगी। सभी शिक्षण संस्थाओं में सॉट विश्लेषण (SWOT) व्यवस्था लागू की जाये ताकि संस्थाएँ स्वयं नियन्त्रित करने के प्रति जागरूक हो सके। ❑

(महामंत्री, अ.भा.रा.शैक्षिक महासंघ)

राजनीतिक शिकंजे की शिकार उच्च शिक्षा

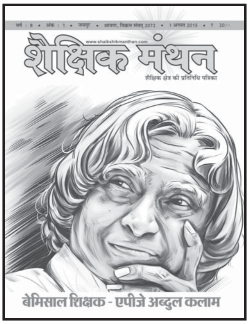

सरकारें उच्च शिक्षा का बजट घटा रही हैं और निजी विश्वविद्यालयों को बढ़ावा दिया जा रहा है। 1995 में निजी विश्वविद्यालय में पंजीकृत छात्रों की संख्या 7 प्रतिशत थी, जो कि 2007-08 में 25 प्रतिशत हो गई थी। इसलिए यह तो स्पष्ट है कि हम शिक्षा के निजीकरण की ओर बढ़ रहे हैं। शिक्षा की कुल गुणवत्ता सुधारने की दिशा में इससे सफलता मिलेगी इसमें संदेह है। होना तो यह चाहिए था कि कुल शिक्षा प्रणाली को मजबूत किया जाता- शिक्षकों की कमी पूरी की जाती, बुनियादी ढाँचे में निवेश किया जाता। देश के केंद्रीय विश्वविद्यालय का ही इन पैमानों पर बुरा हाल है।

वैचारिकी

हजारों साल पहले तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालयों के माध्यम से दुनिया में ज्ञान का डंका बजवाने वाले भारत में भले ही उच्च शिक्षण संस्थानों की संख्या सर्वाधिक हो लेकिन इसकी गुणवत्ता के मामले में हम काफी पीछे हो गए हैं। हमारे हार्वर्ड कहे जाने वाले केंद्रीय विश्वविद्यालय का हाल का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसमें 37 प्रतिशत शैक्षणिक पद रिक्त पड़े हैं। शिक्षा के मामले में जगद्‌गुरु कहलाने वाले भारत में ऐसी स्थिति क्यों हुई? क्यों हम गुणवत्ता में सुधार नहीं कर पा रहे हैं? क्या राजनीतिक प्रभाव से मुक्त होने के बाद इसमें सुधार आ सकता है? ऐसे ही प्रश्नों पर विशेषज्ञों की राय यहाँ पर दी जा रही है-

समाज और उद्योगों से जोड़ें शिक्षा

एम.एम. अंसारी, पूर्व सदस्य यूजीसी के अनुसार

हमारे देश के विश्वविद्यालयों में पढ़ाई का वह वातावरण और स्तर नहीं है जो दुनिया के अन्य प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में देखने को मिलता है। वातावरण के लिए जरूरी है कि विश्वविद्यालयों को राजनीति का अखाड़ा बनने से रोका जाए। विश्वविद्यालय पढ़ाई के लिए हैं तो उन्हें इस काम को केंद्रीयकृत होकर करने देना चाहिए। सरकार का काम है विश्वविद्यालयों को आवश्यक सुविधाएँ मुहैया कराना लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं रहा है।

वातावरण सुधारना होगा

हमारे देश के विश्वविद्यालयों में राजनीतिक प्रभाव देखना हो तो इनकी नियुक्ति प्रक्रिया को ही देख लीजिए। जो व्यक्ति शिक्षा जगत से नहीं है उसे ही कुलपति बना दिया जाता है। फिर पढ़ाने के लिए शिक्षकों की नियुक्तियों में भी शुरूआत होती है, उम्मीदवारों के राजनीतिक संबंधों से। जो राजनीतिक नियुक्तियों के आधार पर विश्वविद्यालयों में हैं वे इसी क्रम को आगे बढ़ाते हैं। पढ़ाई जिसके लिए विश्वविद्यालय बने हैं, उनसे हमारा ध्यान हटता जा रहा है। जिस व्यक्ति का कोई राजनीतिक संबंध नहीं है जो केवल पढाई के लिए समर्पित है, वह पढ़ाई के कार्यक्रम से दूर ही रहता है।

धन का अभाव

हमारे देश में सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी का छह प्रतिशत भी शिक्षा पर खर्च नहीं किया जाता है। इसमें भी लगभग एक प्रतिशत उच्च शिक्षा पर खर्च किया जाता है। उच्च शिक्षा के लिए संसाधनों की आवश्यकता होती है। पुस्तकालय चाहिए, प्रयोगशालाएँ चाहिए लेकिन इन पर धन के अभाव में पर्याप्त खर्च नहीं किया जाता। ऐसे में चाहकर भी अनुसंधान का काम कैसे हो सकेगा?

यदि उच्च स्तरीय अनुसंधान का काम कराना हो तो उसके लिए विद्यार्थियों को संसाधन भी तो चाहिए लेकिन यह हमारे यहाँ उपलब्ध नहीं है क्योंकि धन का अभाव है। जरा सोचिए कि अनुसंधान और शिक्षा का चोली-

दामन का साथ होता है। इसके सहारे शिक्षकों को अन्य बातें भी जानने को मिलती हैं। वह खुद को तो नई जानकारियों से रूबरू कराता ही है विद्यार्थियों को भी इन जानकारियों से रूबरू करवाता है। जब गुणवत्तापरक अनुसंधान नहीं हो पाते तो विश्वविद्यालय में पढ़ाई की गुणवत्ता में गिरावट तो आती ही है।

समाज और उद्योगों से जुड़ाव

शिक्षा का समाज और उद्योगों से जुड़ाव होना बेहद आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर हम ऐसा नहीं पाते हैं कि जब स्वच्छ भारत अभियान चले तो विश्वविद्यालय से उसे जोड़ा जाए। हमारे उद्योगों की जरूरतें क्या हैं, इस पर पढ़ाई को केंद्रित करते हुए विद्यार्थियों को तैयार करना होगा। आखिरकार विश्वविद्यालयों से ही तो हम मानव संसाधन विकास कर सकते हैं तो उसके लिए हमें उस ज्ञान को उपलब्ध कराना होगा जो भविष्य की आवश्यकता है।

वर्तमान में विश्वविद्यालयों से निकलने पर विद्यार्थियों को उद्योग अपने अनुसार प्रशिक्षित करता है। हमें चाहिए कि पहले से ही प्रशिक्षित लोगों को तैयार करें। जहाँ तक कला संकाय की बात है तो कॉलेज और विश्वविद्यालयों में सभी प्रकार की शिक्षाएँ दी जा रही हैं किसी एक विषय को लेकर विशेषज्ञ तैयार नहीं किये जा रहे हैं। विश्वविद्यालयों के स्तर में सुधार आ सकता है बशर्ते इन्हें भी खेलों की तरह खासतौर पर क्रिकेट की तरह विकसित किया जाए।

शिक्षकों की गुणवत्ता सुधारने पर हो जोर

शरदचंद्र बेहार, पूर्व कुलपति,
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता
वि.वि., भोपाल के अनुसार

हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ सालों से जो नीति चल रही है, उससे स्पष्ट लगता है कि सरकार उच्च शिक्षा पर खर्च कम करना चाह रही है। सरकारें विश्वविद्यालयों से कह रही हैं कि वे अपने लिए निजी स्रोतों से अधिक से अधिक फंड जुटाएँ। विश्वविद्यालयों को सेल्फ फाइनेंस स्कीम शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। यह प्रक्रिया यूपीए के दौर में ही शुरू हो गई थी और एनडीए सरकार ने इस प्रक्रिया को और गति दे दी है। अगर हम इसी रास्ते चलते रहे तो इसका एक परिणाम तय है कि – उच्च शिक्षा लाभ के लिए बेचने वाली वस्तु बन जाएगी और उसे वही लोग खरीद पाएंगे जिनके पास पैसा है।

प्राय: सुनने को मिल जाता है कि देश में कुछ विश्वविद्यालयों में श्रेष्ठता के मानक इतने बेहतर किए जाएंगे कि वे दुनिया के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों में शामिल हो जाएँ। इस कथन में दरअसल जो कहा जा रहा है उससे अधिक छिपाया जा रहा है। छिपाया यह जा रहा है कि देश में उच्च शिक्षा अध्ययन के जो हजारों कॉलेज हैं, उन सबकी गुणवत्ता सुधारने की बजाय केवल कुछ चुनिंदा संस्थानों को ही बेहतर शिक्षा के केंद्र में विकसित किया जाएगा।

सवाल यह है कि शेष शिक्षा संस्थानों में गुणवत्ता का स्तर क्या गिरने दिया जाए? ऐसी नीति से तो देश में शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार नहीं लाया जा सकता। प्राथमिकता कुछ संस्थानों में गुणात्मक शिक्षा देने की बजाय सभी संस्थानों की गुणात्मकता का औसत स्तर उठाना होना चाहिए। तीसरी बात यह कि शिक्षा संस्थानों में शिक्षा का स्तर तब सुधरेगा जब शिक्षक बेहतर हों। इसके लिए शिक्षकों की गुणवत्ता सुधारने के कार्यक्रम चलाना चाहिए।

हमारे कुछ छात्र विदेश जाएँ और वहाँ शिक्षा प्राप्त करें, इससे देश को शायद ही कुछ हासिल हो। पर अगर हम अपने शिक्षकों को दुनिया के नामी विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण के लिए भेज सकें, तो उससे जरूर हमारी आने वाली पीढ़ियों को उसका लाभ मिलेगा। बेहतर शिक्षक ही शिक्षा की उच्च गुणवत्ता की गारंटी हो सकते हैं। यह सही है कि विद्यार्थी अपना दीपक खुद बने तभी शिक्षा की कोई सार्थकता है। पर कोई विद्यार्थी दीपक बने उसके लिए भी तो तेल चाहिए, बाती चाहिए और एक चिंगारी चाहिए। एक अच्छा शिक्षक ही यह काम कर सकता है।

निजी विश्वविद्यालयों में तेजी से बढ़ रहे छात्र

प्रो. सुखदेव थोराट, पूर्व चेयरमैन,
यूजीसी के अनुसार

सरकारें उच्च शिक्षा का बजट घटा रही हैं और निजी विश्वविद्यालयों को बढ़ावा दिया जा रहा है। 1995 में निजी विश्वविद्यालय में पंजीकृत छात्रों की संख्या 7 प्रतिशत थी, जो कि 2007-08 में 25 प्रतिशत हो गई थी। इसलिए यह तो स्पष्ट है कि हम शिक्षा के निजीकरण की ओर बढ़ रहे हैं। शिक्षा की कुल गुणवत्ता सुधारने की दिशा में इससे सफलता मिलेगी इसमें संदेह है। होना तो यह चाहिए था कि कुल शिक्षा प्रणाली को मजबूत किया जाता-शिक्षकों की कमी पूरी की जाती, बुनियादी ढांचे में निवेश किया जाता। देश के केंद्रीय विश्वविद्यालय का ही इन पैमानों पर बुरा हाल है।

राज्य विश्वविद्यालयों जैसे राजस्थान वि.वि., जयपुर, इलाहाबाद विवि तथा सागर वि.वि., म.प्र. जो एक जमाने में 'सितारा' विश्वविद्यालय हुआ करते थे उनकी हालत तो और भी बदतर है। न शिक्षक हैं और न ही संसाधन। ...सरकार का जोर 10-12 विश्वविद्यालयों और कुछेक संस्थान-कॉलेजों को श्रेष्ठतर बनाने पर है। उनको और अधिक पैसा दिया जा रहा है। पर इससे तो शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता नहीं सुधर सकती। देश के बहुसंख्यक विश्वविद्यालयों को रामभरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। ❑

ABRSM Higher Education Wing

National Working Committee Meeting Organised at Delhi

ABRSM Higher education wing national working committee meeting was organized on July 12, 2015 at Geeta Bhavan, Kamla Nagar, Delhi, where 97 representatives of 37 Universities from 14 states of the country participated.

The inagural session commenced with "saraswati vandana" and "deep prajawalan"by Pro. ShushmaYadav, Pro Vice Chancellor, Indira Gandhi National Open University and Dr. Vimalprasad Agrawal, General Secretory Prof. Jagdish Prasad Singhal and other office bearers. Prof. Jagdish Prasad Singhal expounded successful journey of ABRSM from its establishment in the 1988 till date. He also gave information about some demands and agitations floated by ABRSM and glorious historical success due to demand satisfied by MHRD like increment as percentage of prevailing basics, higher grade for Associate Professors etc.

Prof. ShushmaYadav Pro Vice- Chancellor, Indira Gandhi National Open University, in her inaugural address discussed important role of teachers in the society. She identified need of education which helps improving personality of the students who think about the society and nation. She also showed her worries about Indian brains leaving India to serve other countries. She also expressed her expectations from teachers and Shaikshik Sangh to initiate and put in hard efforts and contribute in framing new education policy which will lead to overall development of generation thinking about society and nation.

Dr. Vimal Prasad Agrawal president of ABRSM in his presidential address, discussed working of organisation, its growth with contribution to the nation building and motivated representatives to have active contribution in the field of education towards improvement of the system and formulation of the new education policy.

At Session I issues related to Academic Performance Indicator were discussed. Largely issues related to calculation and implementation of API system are facing number of problems as well as having same proportion of different categories from III A to III E for all promotion of all categories i.e promotion from categories - I to categories – II, categories - II to categories – III and so on. Here issues were raised about how come contribution from Assistant Professor in category - I and Professor seeking promotion from category V to category VI.

Prof. Pragnesh Shah, secretory ABRSM Higher Education Wing raised and discussed issues related to requirement of different skills at different stages of career as a college or university teacher. At the initial stage a teacher is required to acquire and develop skills related to class room management, effective communication as well as subject proficiency etc. here we can't expect him to contribute by research project, writing book, guiding research scholars or having patents etc. As an outcome, the discussion identified immediate needs relook of API frame work.

At the session – II, issues related to anomalies in the implementation of the VIth pay commission for the College / Universities teachers appointment, promotions, retirement age, pension scheme and other service conditions.During the discussion following issues important points emerged requiring immediate actions towards solution of the same:

1. Uniform implementation of M. Phil as well as Ph. D. increments to teachers across the country.

2. Full amount of VIth pay arrears should be paid immediately.

3. Ph. D completed as per the then prevailing rules of recognized university, before implementation of Ph. D. Regulation 2009, be recognized and considered at par with Ph.D. as per Ph. D. Regulation 2009.

4. Professorship promotion shall be made possible for college teachers.

5. Retirement age of 62 years, be made uniform for all College / University teachers across the country.

6. All the College / University teachers who are presently under Cumulative Pension Fund scheme (CPF) shall be permitted to shift to GPS scheme.

7. Newly appointed teach-

ers covered under new contributory pension scheme should be covered under GPF.

It was stroked here for University Grant Commission as well as Ministry of Human Resource Development (MHRD) should initiate resolution and implementation of above issues uniformly across the country.It was also felt that in the implementation of VIIth pay commission, MHRD should take care of all above points and payment of arrears, if any payable, should be paid once and not in installment. It should also take care of time bound promotions up to professor, for the college teachers. University Grant Commissions must set up committee for VIIth pay immediately.

At the session – III, discussion took place with reference to new education policy. At this session Dr. Jagdish Prasad Singhal – General Secretory ABRSM presented views for the new education policy. He appraised about 33 points including 20 related to higher education, identified and uploaded by MHRD seeking public comments in regard to new education policy to be framed. Here he identified need for the education policy which takes care of quality of all the areas related to education including syllabi, teachers, institutions etc. He further added that new education policy must take care of Hon. Prime Ministers mission – developed world leader India and shall insist minimum government with maximum governance.

In the second half of the session, secretary in charge higher wing Shri Mahendra Kumar discussed issues related to strengthening organisation structure at each of the affiliated unit. He spoke about need and importance of each of the yearly compulsory program like annual membership drive, Guruvandana Karyakram, Kartvyabodh divas and preparing as well as presenting accounts to annual general body.

At the valedictory session Secretary organisation Shri Mahendra Kapoor gave information about upcoming programs and Rashtriya Adhiveshan at Nagpur in October 2015. President of ABRSM Dr. Vimal Prasad Agrawal motivated the entire representative attending working committee to spread the thinking of shaikshik Sangh to the teachers of the country and contribute towards the building new generation of the country with thinking of dedication to the nation with the help of strong and advanced education system. ❑

ABRSM Karnataka Higher Education Wing Meeting held in Bengaluru

A meeting of like-minded teachers and academicians was conducted in Yadav Smriti, Sheshadripuram, Bengaluru to discuss establishment of Proposed Teacher organization in Karnataka state. More than 40 teachers of different disciplines of 8 universities attended the meeting. Dr. Raghu Akamanchi of Hubballi and Shivanand Sindhanakera coordinated the meeting.

The meeting began with welcome address by Shivanand Sindhanakera and later Dr. Raghu Akamanchi spoke introductory words detailing the need for a novel kind of Teacher organization under the banner of ABRSM.

Prof. J.P. Singhal , the All India General secretary of ABRSM, delivered a lead speech on the issues related to ABRSM and its various functions. He spoke about the history of ABRSM and the measures taken by the organization in bringing qualitative change in nation's education policy and teacher development. He stressed the need for multi-functions of the organization. Teacher-teaching-student-society which leads to nation building are the major focus of ABRSM. He also spoke on the structure of organization and its functions. Although ABRSM is very familiar academic organization in the North, it is yet to make appearance in the South. Prof. Singhal discussed various education policies and UGC pay commissions and how ABRSM actively participated in designing comprehensive policies. Issues related Ph.D and other qualification were also discussed by Prof. Singhal.

Prof. K. Balakrishna Bhat, the Additional General Secretary of ABRSM spoke about the prospects of ABRSM in Karnataka state. Mr. Arun Shahapur, the MLC , discussed various anti-teacher policies of Karnataka government and also suggested how to build an effective teacher organization in the state that will play a major role.

It is also decided to entrust Prof. Raghu Akamanchi the responsibility of holding further consultations with various universities and teachers to start the state unit for college teachers and university level units. He is designated as state convener by Prof. K. Balakrishna Bhat.

पीएच.डी. नियम 2009 पूर्वव्यापी समय से लागू न हो

नवीन शिक्षा नीति भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित हो

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के उच्च शिक्षा संवर्ग की राष्ट्रीय कार्यसमिति की 12 जुलाई 2015 को दिल्ली में सम्पन्न बैठक में पीएच.डी. नियम 2009 के लागू होने से उत्पन्न स्थिति पर विचार-विमर्श किया गया और मानव संसाधन विकास मंत्री महोदया को यह आग्रह करने पर सहमति बनी कि इन नियमों के लागू होने के पूर्व पीएच.डी. हेतु पंजीकरण कराने वाले एवं पीएच.डी. धारकों को नवीन नियमों के अन्तर्गत पीएच.डी. करने वालों के समकक्ष माना जाये। इसके अलावा एपीआई के वर्तमान नियमों के पुनरावलोकन करने पर भी जोर दिया गया। उच्च शिक्षा में कार्यरत शिक्षकों की समस्याओं पर विचार किया गया एवं उनके निराकरण के लिए प्रभावी कदम उठाने का निर्णय लिया।

उच्च शिक्षा संवर्ग ने भारत सरकार की नवीन शिक्षा नीति पर विचार विमर्श किया और अपना मत शासन को सौंपने का निर्णय लिया। नवीन शिक्षा नीति पूर्णतया भारतीय दृष्टिकोण पर आधारित हो, शोध एवं नवाचार को प्रोत्साहन देने वाली हो, शिक्षा में स्वतन्त्र चिन्तन को प्रोत्साहित करने वाली हो, मानव निर्माण में सहायक हो और छात्र केन्द्रित हो। बैठक में महासंघ के उच्च शिक्षा संवर्ग के विस्तार को लेकर भी चर्चा हुई और अधिकाधिक विश्वविद्यालयों में महासंघ की इकाई बने इस ओर प्रभावी कदम उठाने का निर्णय लिया गया। विशेष रूप से विभिन्न राज्यों की जिम्मेदारी कुछ अधिकारियों को सौंप कर इसे प्रभावी बनाया जाये। प्रारम्भ में इग्नू की प्रो. कुलपति प्रो. सुषमा यादव ने कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र में शिक्षा नीति के सम्बन्ध में अपने विचार रखे।

गुजरात के वार्षिक अधिवेशन में अध्यापकों के प्रश्नों को लेकर चर्चा

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ गुजरात की दिनांक 12 जुलाई 2015 को डॉ. हेडगेवार भवन अहमदाबाद में प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एवं एचटीएटी के अध्यापकों का अधिवेशन आयोजित हुआ। जिसमें गुजरात राज्य के खेल एवं शिक्षामंत्री श्री नानुभाई वानाणी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पश्चिम क्षेत्र कार्यवाह श्री सुनील भाई मेहता एवं अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय सचिव श्री मोहन पुरोहित उपस्थित रहे। अधिवेशन में प्राथमिक एवं माध्यमिक पाठशालाओं के अध्यापकों, चित्र एवं व्यायाम शिक्षकों के प्रश्नों को लेकर जिला प्रतिनिधियों ने अपना पक्ष रखा। इसमें प्रत्येक जिले से जिला प्रतिनिधि उपस्थित रहे। राष्ट्रीय सचिव श्री मोहन पुरोहित ने राष्ट्र हित में शिक्षकों के प्रश्नों के समाधान के लिए मंत्री जी से निवेदन किया। बाद में मंत्रीजी श्री नानुभाई वानाणी ने भी शिक्षकों के प्रश्नों के समाधान का आश्वासन दिया। उन्होंने कहा कि 50 प्रतिशत प्रश्न राज्य सरकार के एवं 50 प्रतिशत प्रश्न केन्द्र सरकार के हैं। प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापकों के प्रश्न जैसे कि चित्र एवं व्यायाम शिक्षकों को उच्च प्राथमिक विभाग में समाविष्ट करना, विद्या सहायकों को पूर्ण वेतन देना, सीसीई परीक्षा संबंधित कई प्रश्नों की चर्चा किशोर कुमार परमार ने की। जिसके निराकरण के लिए मंत्री श्री नानुभाई वानाणी आश्वासन दिया। उन्होंने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं व्यक्ति एवं राष्ट्र निर्माण की बात की। इलेक्ट्रोनिक माध्यम से शिक्षा विषयक मंतव्यों की बात भी मंत्री जी ने दोहराई। पश्चिम क्षेत्र कार्यवाह श्री सुनील भाई मेहता ने राष्ट्र हित एवं राष्ट्र विचारधारा की बात की। राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के प्रदेश अध्यक्ष श्री घनश्याम भाई पटेल, महामंत्री श्री भीखाभाई पटेल ने एवं संगठन मंत्री श्री रतुभाई गोल भी राष्ट्रहित में शिक्षकों की भूमिका को रखा। अधिवेशन में राज्य के सभी जिलों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। कार्यक्रम में 33 जिलों में से 30 जिले के प्रतिनिधि उपस्थित थे, जिसमें नागपुर अधिवेशन की भी चर्चा की गई।

जीडी कॉलेज अलवर में पौधा रोपण कार्यक्रम

शहर के गौरीदेवी राजकीय महिला महाविद्यालय में रुक्टा राष्ट्रीय की ओर से पौधारोपण किया गया। रुक्टा के संयुक्त सचिव डॉ. शेफाली बार्थोनिया ने बताया कि कॉलेज परिसर में गुड़हल, चाँदनी, कचनार के पौधे लगाए। इस दौरान प्राचार्य ज्योति सिन्हा, उपाचार्य ओपी महावर, संगठन की प्रान्तीय कार्यकारिणी सदस्य डॉ. रचना आसोपा, विभागीय महिला प्रतिनिधि डॉ. ऋतु गुप्ता, डॉ. डीसी चौबे, डॉ. रंजना गुप्ता, डॉ. लता शर्मा, डॉ. भवनाथ पाण्डे सहित कई सदस्य मौजूद थे।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि. में नयी शिक्षा नीति पर कार्यशाला आयोजित

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ (उ.प्र.) के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी इकाई द्वारा उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर आयोजित कार्यशाला में सेमेस्टर प्रणाली को घातक बताते हुए इसे तुरंत समाप्त करने की माँग की गयी है। कहा गया कि इससे पढ़ाई लिखाई समाप्त होती जा रही है और शिक्षक वर्ष पर्यन्त सिर्फ परीक्षाओं की तैयारी में लगे रहते हैं। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के योग साधना केन्द्र में आयोजित कार्यशाला में उच्च शिक्षा में नीतिगत परामर्श से जुड़े प्रश्नों पर आधार पत्र प्रस्तुत करते हुए डॉ. दीनानाथ सिंह ने उच्च शिक्षा की वर्तमान दशा पर चिन्ता जताते हुए व्यवस्था की विभिन्न खामियों पर ध्यान खींचा। उन्होंने कहा कि उच्च शिक्षा की एक बदसूरत तस्वीर सामने है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एक धनदायी संस्था बनकर रह गया है। अधिकार इसे दिया गया किन्तु इसके क्रियान्वयन में यह समर्थ नहीं है। स्ववित्तपोषित शिक्षा व्यवस्था ने शिक्षा को बिकाऊ बना दिया है। इसीलिए सरकार की पीपीपी नीति पर बड़ा प्रश्न खड़ा होता है कि यह पीपीपी (पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप) नीति चलाना चाहिए या नहीं।

अपने आधार पत्र में डॉ. दीनानाथ सिंह ने उच्च शिक्षा में सुधार संबंधी मौलिक बातों की चर्चा करते हुए छात्रों को भी बीच में कक्षायें (विषय) बदलने का अवसर प्रदान किए जाने को उचित बताया। उन्होंने छात्राओं के अध्ययन पर जोर देते हुए कहा कि बेटियाँ पढ़ना चाहती हैं किन्तु उन्हें सुरक्षा मिलनी चाहिए।

कार्यशाला में डॉ. हरि प्रसाद अधिकारी ने कहा कि शिक्षक को स्वयं आदर्श उपस्थित करना चाहिए। शिक्षक अपने आचरण से समाज को बनाता है। डॉ. रमेश प्रसाद ने कहा कि शिक्षकों को आत्मावलोचना करना चाहिए कि इसमें कितने दोषी वे स्वयं हैं। डॉ. विश्वनाथ कुमार ने कहा कि उच्च शिक्षा का उद्देश्य रोजगारपरक एवं कौशल विकास कदापि नहीं होना चाहिए।

डॉ. शैलेन्द्र कुमार उपाध्याय ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य जब तक तय नहीं होगा, गुणवत्ता की बात करने का कोई अर्थ नहीं है। डॉ. विजय शर्मा ने कहा कि प्राचीन काल में शिक्षा का एकमेव उद्देश्य था मानव निर्माण। डॉ. अरुण कुमार राय ने कहा कि सेमेस्टर शिक्षा प्रणाली से शिक्षा का विनाश हो रहा है।

डॉ. आशुतोष मिश्र ने कहा कि विश्वविद्यालय में शिक्षकों को विभागाध्यक्ष, संकाय प्रमुख आदि प्रशासनिक पद न सौंपे जायें, उन्हें सिर्फ पढ़ने-पढ़ाने दिया जाय तभी शिक्षा में सुधार होगा। कार्यशाला में डॉ. पी.एन. सिंह ने समाज में नैतिकता के ह्रास पर गहरी चिन्ता जताते हुए नैतिक शिक्षा का प्रारम्भ परिवार से करने पर जोर दिया।

कार्यशाला में प्रमुख वक्ता डॉ. व्यास मिश्र ने कहा कि शिक्षा के मूल में ही आचार है। मनुस्मृति में शिक्षा के मूल में आचार को बताया गया है जिससे आचरण की नींव पड़ती है जो विद्यार्थी द्वारा आगे चलकर उत्तम समाज बनाने में भूमिका निभाती है। डॉ. सरोज पाण्डेय ने 20 बिन्दुओं के नीतिगत विमर्श में भाषा का प्रश्न महत्त्वपूर्ण बताते हुए राष्ट्र सांस्कृतिक एकता के लिए निज भाषा के उन्नयन एवं अनुशीलन को आवश्यक बताया।

संयोजक डॉ. राजनाथ ने अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व को अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुए मातृभाषा के अधिकाधिक उपयोग की व्यावहारिकता पर बल दिया।

अपने अध्यक्षीय संबोधन में डॉ. रघुवीर सिंह तोमर ने सेमेस्टर शिक्षा प्रणाली को तत्काल समाप्त करने की माँग की। कार्यशाला का संचालन डॉ. जगदीश सिंह दीक्षित ने किया। प्रारम्भ में स्वागत भाषण डॉ. शैलेष कुमार मिश्र ने तथा धन्यवाद ज्ञापन डॉ. राजनाथ ने किया। डॉ. सरोज पाण्डेय के 'वन्देमातरम्' के उद्घोष के साथ कार्यशाला सम्पन्न हुई।

शैक्षिक महासंघ का क्षेत्रीय अभ्यास वर्ग नैनीताल में सम्पन्न

राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ उत्तर प्रदेश और उत्तराखण्ड के कार्यकर्ताओं का क्षेत्रीय अभ्यास वर्ग 24-25 जून, 2015 को पार्वती प्रेमा जगाती सरस्वती विहार ,नैनीताल में संपन्न हुई। जिसमें विभिन्न प्रकार की शिक्षक समस्याओं और उनकी सेवा सम्बन्धी विषयों पर विषद चर्चा हुई। अभ्यास वर्ग में संगठन की पृष्ठभूमि, चित्त-चरित्र, राष्ट्रीय परिदृश्य में अपने संगठन की भूमिका, वर्ष भर के कार्यक्रम, समाज एवं शैक्षिक आयाम, सेवा शर्तें तथा वेतनमान आदि की चर्चा, शिक्षकों का अभाव/पूर्ति, सरकार का रवैया अपनी दृष्टिकोण से समाधान हेतु कार्ययोजना पर सहमति बनी। अभ्यास वर्ग में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय सहसंगठन मंत्री श्री ओमपाल सिंह, उच्च शिक्षा संवर्ग के प्रभारी श्री महेन्द्र कुमार एवं राष्ट्रीय उपाध्यक्ष डॉ. निर्मला यादव ने पाथेय दिया। इस अवसर पर उत्तराखंड इकाई का पुनर्गठन हुआ। जिसमें उत्तराखंड इकाई के नवनिर्वाचित अध्यक्ष डॉ. के.पी. सिंह एवं महामंत्री डॉ. बी.बी. जोशी ने सभी का आभार ज्ञापन किया।